अध्याय 12

यीशु का साहस

यीशु के जीवन के अंतिम सप्ताह का यह अभी मंगलवार ही था। हम इसे ''झगड़े का दिन'' कहते हैं, क्योंकि इस पूरे व्यस्त दिन में यीशु मन्दिर को शुद्ध करने के अपने अधिकार (मरकुस 11:27-33), कर देने (मरकुस 12:13-17), और मुर्दों के जी उठने (मरकुस 12:18-27) पर फरीसियों, सदूकियों, हेरोदियों और शास्त्रियों के साथ बहसता रहा। इसके अलावा उसने एक व्यवस्थापक के प्रश्न के उत्तर में सबसे बड़ी आज्ञा और उससे अगली आज्ञा बताई (मरकुस 12:28-31), शास्त्रियों और फरीसियों की कड़ी निंदा थी (मरकुस 12:38-40), और बहुत सम्भव यरूशलेम के विनाश से सम्बन्धित जैतून पहाड़ का उपदेश दिया (मत्ती 24:1-51; मरकुस 13:1-37)।

दुष्ट किसानों का दृष्टांत (12:1-12)[1]

[1]फिर वह दृष्टान्तों में उनसे बातें करने लगा: ''किसी मनुष्य ने दाख की बारी लगाई, और उसके चारों ओर बाड़ा बाँधा, और रस का कुण्ड खोदा, और गुम्मट बनाया; और किसानों को उसका ठेका देकर परदेश चला गया। [2]फिर फल के मौसम में उसने किसानों के पास एक दास को भेजा कि किसानों से दाख की बारी के फलों का भाग ले। [3]पर उन्होंने उसे पकड़कर पीटा और छूछे हाथ लौटा दिया। [4]फिर उसने एक और दास को उनके पास भेजा; उन्होंने उसका सिर फोड़ डाला और उसका अपमान किया। [5]फिर उसने एक और को भेजा; उन्होंने उसे मार डाला। तब उसने और बहुतों को भेजा; उनमें से उन्होंने कुछ को पीटा, और कुछ को मार डाला। [6]अब एक ही रह गया था, जो उसका प्रिय पुत्र था; अन्त में उसने उसे भी उनके पास यह सोचकर भेजा कि वे मेरे पुत्र का आदर करेंगे। [7]पर उन किसानों ने आपस में कहा, 'यही तो वारिस है; आओ, हम इसे मार डालें, तब मीरास हमारी हो जाएगी।' [8]और उन्होंने उसे पकड़कर मार डाला, और दाख की बारी के बाहर फेंक दिया। [9]इसलिये दाख की बारी का स्वामी क्या करेगा? वह आकर उन किसानों का नाश करेगा, और दाख की बारी दूसरों को दे देगा। [10]क्या तुम ने पवित्रशास्त्रस्त्र में यह वचन नहीं पढ़ा: 'जिस पत्थर को राजमिस्त्रियों ने निकम्मा ठहराया था, वही कोने का सिरा हो गया; [11]यह प्रभु की ओर से हुआ, और हमारी दृष्टि में अद्भुत है'!'' [12]तब उन्होंने उसे पकड़ना चाहा; क्योंकि समझ गए थे कि उसने उनके विरोध में यह दृष्टान्त कहा है। पर वे लोगों से डरे, और उसे छोड़ कर चले गए।

आयत 1. यीशु **दृष्टान्तों में उनसे बातें करने लगा: ''किसी मनुष्य ने दाख की बारी लगाई, और उसके चारों ओर बाड़ा बाँधा, और रस का कुण्ड खोदा, और गुम्मट बनाया; और किसानों को उसका ठेका देकर परदेश चला गया।** ''दृष्टांतों'' (παραβολή,

parabolē) अलग-अलग उदाहरणों या तुलनाओं के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक शब्द है। वास्तविक दृष्टांत में एक आवश्यक सबक होता है और कहानी के शेष भाग में उस मुख्य विचार का समर्थन किया गया होता है। परन्तु यीशु के दृष्टांतों का व्यापक अर्थ ही हो सकता है, जैसा कि 12:1-12 वाले इस दृष्टांत में है।

इसके विपरीत, रूपक में कहानी में छिपी सच्चाई और विवरण में तुलना की कई बातें होती हैं। दाख की बारी के किसानों का दृष्टांत वास्तविक दृष्टांत के बजाय रूपक होने से अधिक निकट है। विलियम बार्कले के अनुसार, ''यह रूपक और दृष्टांत के बीच काट अर्थात एक प्रकार का मिश्रण है। इसकी हर बात में गुप्त अर्थ नहीं है परन्तु सामान्य से अधिक [विवरण] है।''[2]

यीशु ने इस दृष्टांत को समझाने का कोई प्रयास नहीं किया क्योंकि वह जानता था कि इन अगुओं को इस बात की समझ है कि वह उन्हीं से बात कर रहा था। दृष्टांत सुनने के बाद उन्होंने उसे पकड़ना चाहा (12:12)। निश्चय ही कहानी का वास्तविक उद्देश्य यहूदियों को यह सुझाव देना था कि अभी भी यदि वे मन फिरा लेते हैं तो उनके लिए उद्धार का द्वार खुल जाना था।[3] इस्राएलियों लिए परमेश्वर के पास एक योजना था, परन्तु इसमें उनका मन फिराव आवश्यक था। यहूदी लोग मन फिराने को तैयार नहीं थे जिस कारण यरूशलेम का विनाश एक पीढ़ी में हो जाना था (देखें 13:30; मत्ती 24:34; लूका 21:31)।

इस्राएल को ''दाख की बारी'' के रूप में दिखाना पुराने नियम की अवधारणा थी। मरकुस के इस वचन में LXX में यशायाह 5:1-6 की तरह वही यूनानी शब्दावली मिलती है। उस वचन में ''एक अति उपजाऊ टीले पर एक दाख की बारी'' में ''उत्तम जाति की एक दाखलता'' लगाए जाने की बात है। इसमें बताया गया है कि ''स्वामी ने एक गुम्मट बनाया'' और दाख की बारी के बढ़ने और फल देना सुनिश्चित करने के लिए इसमें ''दाखरस के लिए कुण्ड खोदा'' परन्तु उस पर ''निक्कमी'' दाखें लग गईं। इसलिए स्वामी ने ''उसके कांटे वाले बाड़े को उखाड़'' देना था ताकि यह ''रौंदी जाए।''

इस्राएल में दाख की बारी आम देखने को मिल जाती थी। गुम्मट वह जगा होती थी जहां से कटनी तक दाखों को चोरों और जंगली जानवरों से बचाने के लिए चौकीदार रखे जाते थे। दाख से रस की फसल के लिए, पत्थर काटकर कोहलू बनाए जाते थे। जवान दाखों को पैरों से लताड़ते, और ऊपर वाले खाने से रस नीचे वाले खाने की ओर बहता था, जहां से इसे भण्डारन के लिए निकाल लेते। श्रेष्ठगीत 2:15 में ''दाख की बारियों में फूल'' लगने की बात है। यूहन्ना 15:1-6 में ऐसा ही अलंकार दाख और टहनियों के दृष्टांत में सब चेलों के लिए लागू किया गया है।

इस दृष्टांत में ज़मींदार परमेश्वर को दिखाया गया है, जिसे यहूदी जाति से, जिसे उसने अपनी प्रजा के रूप में चुनकर आशीष दी थी, बहुत उम्मीद रखने का अधिकार था। ''किसान'' (''काश्तकार''; KJV) यहूदी अगुओं को कहा गया है जो परमेश्वर की दाख की बारी में पट्टे पर काम करने वाले किसानों की तरह थे। कई बार ऐसा लगा जैसे परमेश्वर ने अपनी प्रजा को परखने के लिए उनके बीच में से अपनी उपस्थिति को हटा लिया। यहून्ना बपतिस्मा देने वाले से पहले के चार सौ वर्षों के दौरान परमेश्वर ने इस्राएलियों से फल की मांग करते हुए किसी नबी को नहीं भेजा था। फिर भी उसने अपने अनुग्रहकारी प्रबन्ध में किया था और यदि लोग इसकी खोज में होते तो उन्हें इसकी समझ आ सकती थी।[4]

लूका 20:9 हमें बताता है कि दाख की बारी का स्वामी ''*बहुत दिनों के लिए* प्रदेश चला गया।'' इस कहानी में देरी करने का कोई विशेष महत्व होगा। दाख की बारी लगाई गई थी और उस लगाए जाने के बाद प्रतीक्षा करने का समय था। इस समय में दाख की बारी बढ़कर फल ला सकती थी। लैव्यव्यवस्था 19:23-25 बताता है कि किसान पांचवें वर्ष तक फल इस्तेमाल नहीं करते थे। परन्तु ऐसा उस देश के जिसमें वे गए थे ''अशुद्ध'' या ''खतना रहित'' होने के कारण था आम तौर पर बोने और काटने के बीच चौथे वर्ष में बलिदानों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले फल में तीन वर्ष होते थे। पांचवें वर्ष दाख की बारी से मेज़ के लिए फल मिल जाता था। इसके साथ ही स्वामी को स्वामित्व के अपने अधिकारों को बनाए रखने के लिए भूमि से कुछ मिलना आवश्यक होता था, चाहे यह कतारों के बीच उगने वाले फल से ही हो।

आयतें 2-5. फिर फल के मौसम में उसने किसानों के पास एक दास को भेजा कि किसानों से दाख की बारी के फलों का भाग ले। परन्तु किसानों ने **दास को पकड़कर पीटा और छूछे हाथ लौटा दिया**। अपनी फसल लेने के लिए उस आदमी ने जितने भी दासों को भेजा उन्होंने सब को पीटा या मार डाला। इस कहानी में दासों में हम यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को मिला सकते हैं।

मज़दूरों के स्वामी को उसका हक्क देने से मना करना आम तौर पर स्वामी के दूर रहने पर हो जाता होगा। बहुत से यहूदी दूसरे देशों में धनवान हो गए थे परन्तु इस्राएल में भी उनकी सम्पत्ति थी। हो सकता है कि वह निवेश रोमियों द्वारा किया गया हो और स्थानीय लोगों द्वारा उस पर कब्जा कर लिया गया होगा। इस्राएल देश में बहुत से विदेशी स्वामी थे; वे खेत में काम करने के लिए यहूदी किसानों को थोड़ी सी मज़दूरी देते थे, और ये यहूदी अपने ज़िम्मीदारों के वहां न होने पर उस पर कब्जा कर लेते थे। लगाने से लेकर काटने तक के लम्बे समय के कारण हो सकता है कि सेवकों को लगा हो कि वे पट्टा देने से बच सकते हैं। परमेश्वर का धीरज इस अर्थ में बताया गया था कि उसने अपने लोगों को उसकी आज्ञा को मानने के बहुत से अवसर दिए थे।

आयत 6. अंत में उस आदमी ने यह सोचकर कि **वे मेरे पुत्र का आदर करेंगे** अपने **प्रिय पुत्र** को भेज दिया; ''प्रिय पुत्र'' निश्चय रूप में परमेश्वर के पुत्र मसीह को कहा गया है। बेशक आज यह हमारे लिए यीशु के उन सुनने वालों से बढ़कर स्पष्ट है। यूहन्ना 3:16 परमेश्वर के ''इकलौते पुत्र'' (μονογενής, *monogenēs*) की बात करता है जो कि वही शब्द है जिसका इस्तेमाल इब्रानियों 11:17 में इसहाक के लिए किया गया है। यह वाक्यांश ''अनोखा पुत्र'' से मेल खाती होगी क्योंकि इसहाक अब्राहम का अकेला पुत्र नहीं था। यीशु परमेश्वर का अनोखा पुत्र अर्थात परमेश्वर का असली पुत्र था।

फरीसियों के लिए इस वाक्यांश की विशेष तौर पर ठोकर दिलाने वाली बात, यीशु का अपने आपको ''पुत्र'' में मानना था न कि सेवक। यहूदी अगुओं का मानना था कि परमेश्वर पिता के सम्बन्ध में इस प्रकार से अपने आपको कहने का अधिकार किसी को नहीं था।

आयतें 7, 8. फिर यीशु इतिहास से भविष्यद्वाणी की ओर मुड़ गया।[5] इस दृष्टांत के द्वारा, एक बार फिर से वह यहूदी अगुओं को बता रहा था कि उसे उनकी योजनाओं का पता था और वह जानता था कि शीघ्र ही वह उनके हाथों मारा जाएगा। क्रूस कोई आश्चर्य की बात नहीं था बल्कि यह तो परमेश्वर की योजना का भाग सदा से था।

किसानों ने कहा, ''**यही तो वारिस है; आओ, हम इसे मार डालें, तब मीरास हमारी हो जाएगी। और उन्होंने उसे पकड़कर मार डाला, और दाख की बारी के बाहर फेंक दिया।**'' अंत में दाख की बारी के स्वामी ने अपने पुत्र को भेज दिया। परमेश्वर को इस बात का हर अधिकार था कि वह यह माने कि यहूदी लोग उसके पुत्र का आदर करेंगे। फिर भी, जैसा कि यीशु ने कहा, वे उसकी हत्या करने की योजना बना रहे थे। प्रेरितों 7:51, 52 में स्तिफनुस ने ऐसा ही आरोप लगाया:

> हे हठीले, और मन और कान के खतनारहित लोगो, तुम सदा पवित्र आत्मा का विरोध करते हो। जैसा तुम्हारे बापदादे करते थे, वैसे ही तुम भी करते हो। भविष्यद्वक्ताओं में से किस को तुम्हारे बापदादों ने नहीं सताया? और उन्होंने उस धर्मी के आगमन का पूर्वकाल से सन्देश देनेवालों को मार डाला; और अब तुम भी उसके पकड़वानेवाले और मार डालनेवाले हुए।

उन्होंने उन्हें भी मार डाला था जिन्होंने उनके मसीहा के आने की पेशनगोई की थी।[6]

आयत 9. यीशु ने कहा कि **दाख की बारी का स्वामी ... आकर उन किसानों का नाश करेगा, और दाख की बारी दूसरों को दे देगा।** हमें यह अच्छा नहीं लगता कि लोग इस प्रकार से सम्पत्ति चुरा लें, उसके वारिस को मार डालें और स्वामी उनसे तुरन्त बदला न ले। यीशु ने कहा कि राज्य इन यहूदियों से लेकर दूसरों को दे दिया जाना था (स्पष्टतया अन्यजातियों को; मत्ती 21:43)। इस विचार से कि उनके ''दाख की बारी'' के अधिकार दूसरों को दे दिए जाने थे, यहूदी लोग परेशान हो गए। लूका 20:16 के अनुसार, वे पुकार उठे, ''परमेश्वर करे ऐसा न हो!'' मत्ती का विवरण संकेत देता है कि प्रश्न पूछने वालों ने खुद कहा कि दुष्ट किसानों का क्या होगा: ''वह उन बुरे लोगों को बुरी रीति से नष्ट करेगा; और दाख की बारी का ठेका दूसरे किसानों को देगा, जो समय पर उसे फल दिया करेंगे'' (मत्ती 21:41)। लूका यह दिखा रहा होगा कि सुनने वालों को दृष्टांत का अर्थ समझ में आ गया। यह भी हो सकता है कि भीड़ में कुछ लोगों ने इस उत्तर के साथ जवाब दिया, जबकि दूसरों ने इसके संकेतों को देखते हुए कि अन्यजातियों ने परमेश्वर के नये सेवक बन जाना था, अपने नकारात्मक जवाब के साथ इसे ठुकरा दिया।[7] इस्राएलियों द्वारा नबियों के साथ ऐसा ही व्यवहार चौंका देने वाला था और उन्हें इसका पता था (मत्ती 23:30)।

कोई कह सकता है, ''दाख की बारी के स्वामी को अपनी क्षतिपूर्ति करवाने के लिए प्रसिद्ध रोमी कानून का सहारा लेना चाहिए था!'' याद रखें कि यहूदी लोग अवैध गतिविधि करने वालों को दण्ड दिए जाने के लिए विवश होने पर रोमी अधिकारियों पर कुड़ते होंगे। रोम से सहायता लेने का अर्थ रोम के कानून के कुछ आदर को मान लेना होना था, और यह यहूदियों को तुच्छ जाने जाने का एक कारण था। इसके अलावा रोमी हाकिम किसी यहूदी की सम्पत्ति छिन जाने को छोटी बात मानते होंगे। वे तब तक कुछ नहीं करते होंगे जब तक किसी अपराध या बलवे से रोमी साम्राज्य को नुकसान न हुआ हो। न्याय करने वाले आम तौर पर परवाह नहीं करते थे और उन्हें आसानी से घूस दी जा सकती थी। जब तक रोम का कर चुका दिया जाता, अधिकारी किसानों की ऐसी कठिनाइयों को अपने सरकारी कर्त्तव्यों के लिए बेतुकी मानते थे। रोमी नागरिक

के अलावा यदि किसी और को कोई गम्भीर समस्या होती तो इसे नज़रअंदाज़ कर दिया जाता। हो सकता है कि अनुपस्थ ज़िमीदारों को फलस्तीन में बढ़ती परेशानी की वर्तमान स्थिति पता न हो। हो सकता है कि सम्पत्ति के रखवाले यह मान लेते हों कि स्वामी आकर उन्हें दण्ड देने तक जीवित नहीं रहेगा। उसी प्रकार से परमेश्वर के कुछ लोग उसे दूर चला गया मान लेते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वह उनके पापों को भूल जाएगा।

आयतें 10, 11. यीशु को पता था कि आने वाली घटनाएं अंत उसकी विजय का कारण भी बननी थी। यदि धार्मिक अगुवे दृष्टांत में यीशु के वर्णन के रूप में पुत्र को न पहचान पाते तो उनकी कार्यवाहियां कुछ हद तक क्षमा के योग्य भी होनी थीं। परन्तु उन्होंने यीशु को उसी बात के लिए यानी परमेश्वर का पुत्र होने का दावा करने के लिए मरवा डाला। उनके पूर्वाग्रह ने उन्होंने सच्चाई को देखने नहीं दिया जिसे उसने अपने आश्चर्यकर्मों के द्वारा साबित किया। साधारण लोगों को आसानी से इसकी समझ आ गई।

यीशु ने उसने पूछा:

> **''क्या तुम ने पवित्रशास्त्र में यह वचन नहीं पढ़ा: 'जिस पत्थर को राजमिस्त्रियों ने निकम्मा ठहराया था, वही कोने का सिरा हो गया; यह प्रभु की ओर से हुआ, और हमारी दृष्टि में अद्भुत है'!''**

उसने कोने के सिरे की अवधारणा को अपने ऊपर लागू करते हुए, भजन 118:22, 23 से उद्धृत किया। इस भजन को मसीहाई भजन माना जाता था जिसमें आयत 25 में, ''हे यहोवा, विनती सुन, और उद्धार कर'' की विनती थी। इस वाक्यांश का यूनानी मेल खाता शब्द ''होशन्ना'' है जो विजयी प्रवेश के दौरान लोगों ने पुकारा था।

यीशु के लिए भजन का इस्तेमाल इस प्रकार से करना निश्चित रूप में इन फरीसियों के लिए ठोकर दिलाने वाला था। उन्हें उन अनाड़ी राजमिस्त्रियों से मिलाया गया था जिन्होंने कोने के उस सिद्ध पत्थर को नहीं पहचाना, जिसे खदान से काटा गया था। बड़े-बड़े पत्थरों को आम तौर पर गोल करके रखा जाता था और काटने के लिए निर्माण स्थल तक ले जाया जाता था, जैसा कि मन्दिर के विशाल पत्थरों के साथ भी किया गया होगा। मन्दिर के अगुओं ने परमेश्वर को पसन्द संरचना की इच्छा न करके भूल की।

पत्थर का यह दृष्टांत आरम्भिक कलीसिया में प्रसिद्ध हो गया और आम तौर पर इसे दोहराया जाता था (देखें प्रेरितों 4:11; रोमियों 9:32, 33; इफि. 2:20; 1 पतरस 2:4, 7)। यहूदियों ने यीशु को ठुकरा दिया क्योंकि वह उनकी पसन्द का पत्थर नहीं था। आम तौर पर कोने का सिरा इमारत में इस्तेमाल होने वाले दूसरे पत्थरों से अलग किस्म का होता था। इस पत्थर के लिए इस्तेमाल हुए शब्दों (κεφαλὴν γωνίας, *kephalēn gōnias*, मूल में ''कोने का सिरा''), को उस समय के सामान्य रोमी बिल्डिंग में मेहराब का ''ऊपर का पत्थर'' भी बताया जाता था। जैसे भी हो, यह निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता था।

आयत 12. यीशु के शत्रुओं ने **उसे पकड़ना चाहा** और इस अवसर पर उन्होंने उसे कैदी बनाकर ले जाना था परन्तु **वे लोगों से डरे**। उन्होंने उनकी इच्छा को मान लेने वाली भीड़ के इकट्ठा होने तक रुक जाना था। अभी के लिए, यह दिखाने के लिए जिसे यह लगे कि न्याय

हो रहा है, उसे मरवाने के लिए कोई तरकीब निकालने के लिए जासूस भेज दिए (देखें लूका 20:20)।

लूका 20:19 बताता है, ''उसी घड़ी शास्त्रियों और प्रधान याजकों ने उसे पकड़ना चाहा, परन्तु वे लोगों से डरे।'' ये लोग आसानी से समझ सकते थे कि इन बातों का अर्थ यह है कि वे और उनकी कुर्सियां जाती रहेंगी। वे लोगों से डर गए **क्योंकि समझ गए थे कि उसने उनके विरोध में यह दृष्टान्त कहा है**। यह दृष्टांत इसलिए कहा गया था कि वे जान सकें कि उनके पाप उन्हें किधर ले जा रहे थे। उन्होंने यूहन्ना के मारे जाने पर ज़ोर से शिकायत नहीं की थी और परमेश्वर के पुत्र के जल्द ही मारे जाने में भी उनका ही हाथ होना था। वे वैसे नहीं रह सके जैसे परमेश्वर ने ईमानदारी के साथ उनसे उम्मीद की थी कि वे उसके पुत्र को मसीह के रूप में स्वीकार करें। दृष्टांत में, किसान भूल गए कि स्वामी अभी जीवित है और यह पता चलने पर कि वे कितने कुटिल हैं, वह उन्हें दण्ड देने के लिए और अधिकारी भेज सकता था।

कैसर को कर देना (12:13-17)[8]

[13]तब उन्होंने उसे बातों में फँसाने के लिये कुछ फरीसियों और हेरोदियों को उसके पास भेजा। [14]उन्होंने आकर उससे कहा, ''हे गुरु, हम जानते हैं, कि तू सच्चा है, और किसी की परवाह नहीं करता; क्योंकि तू मनुष्यों का मुँह देख कर बातें नहीं करता, परन्तु परमेश्वर का मार्ग सच्चाई से बताता है। तो क्या कैसर को कर देना उचित है या नहीं? [15]हम दें, या न दें?'' उसने उनका कपट जानकर उनसे कहा, ''मुझे क्यों परखते हो? एक दीनार मेरे पास लाओ, कि मैं उसे देखूँ।'' [16]वे ले आए, और उसने उनसे कहा, ''यह छाप और नाम किसका है?'' उन्होंने कहा, ''कैसर का।'' [17]यीशु ने उनसे कहा, ''जो कैसर का है वह कैसर को, और जो परमेश्वर का है परमेश्वर को दो।'' तब वे उस पर बहुत अचम्भा करने लगे।

आयतें 13, 14. फरीसियों और हेरोदियों ने यीशु को **बातों में फँसाने के लिये** अपने प्रयास जारी रखे। उन्होंने देखा कि वह हमेशा चौकस रहता था और उनकी बातों में नहीं फंस सकता था। उन्होंने चापलूसी का इस्तेमाल करना आरम्भ कर दिया: **''हे गुरु, हम जानते हैं, कि तू सच्चा है, और किसी की परवाह नहीं करता; क्योंकि तू मनुष्यों का मुँह देख कर बातें नहीं करता, परन्तु परमेश्वर का मार्ग सच्चाई से बताता है।''** उन्होंने सीधा बोल देने और किसी बड़े, रईस, या धनाढ्य व्यक्ति के प्रति पक्षपात न दिखाने के लिए उसकी प्रशंसा की (देखें प्रेरितों 10:34, 35)।

फरीसियों के ये ''चेले'' जैसा मत्ती 22:16 में उन्हें कहा गया है, जवान पुरुष होंगे जो यीशु की शंकाओं को दूर कर सकते थे। यहां दी गई ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहूदी अगुओं ने यीशु को फंसाने के लिए फरीसियों और हेरोदियों को इकट्ठे भेजा। वे ''भेदिये'' हो सकते हैं जो ''धर्म का भेष धरकर'' (लूका 20:20) और उन्हें उम्मीद थी कि वे यीशु को रोम के विरोध में कही गई उसकी किसी बात में फंसा लेंगे और फिर हाकिम को खबर कर देंगे।

इसलिए उन्होंने उससे पूछा, **''क्या कैसर को कर देना उचित है या नहीं?''** 6 ई. में

यहूदिया पर कब्जा कर लेने के बाद, रोम ने एक मुखतार ठहरा दिया था। यह इलाका सीधे तौर पर कैसर के अधीन था और उसने वहां पर टुकड़ियां तैनात कर दी होंगे क्योंकि इसे गड़बड़ वाला स्थान माना जाता था। तब कर सीधे कैसर के खजाने में डाले जाते थे और अधिकतर यहूदी इसे गुलामी को मान लेने के बराबर चुकाई गई रकम मानते थे। हेरोदियों ने इस स्थिति को रोम के साथ कुछ राजनैतिक प्रभाव रखने की उम्मीद से स्वीकार कर लिया, परन्तु कर बहुत अधिक थे जिस कारण यहूदी इससे बुरी तरह से नाराज़ थे। लोगों के लिए भूमि कर (पूरे अनाज का दसवां भाग और दाखरस और फल की उपज का पांचवां भाग) और आय कर (आदमी की आमदन का एक प्रतिशत) चुकाना आवश्यक था। इसके अलावा पोल टैक्स (व्यक्ति कर)[9] चौदह से पैंसठ वर्ष के सब पुरुषों और बारह से पैंसठ वर्ष की सब स्त्रियों पर लगाया जाता था; रोम में पाई जाने वाली सुविधाओं लिए एक दीनार चुकाना आवश्यक होता था।[10]

इस्राएली लोग रोमियों के शासन का विरोध करते थे और उन्हें कर अनिच्छापूर्वक देते थे परन्तु हेरोदी लोग उनका समर्थन करते थे।[11] हेरोदेस और रोम के समर्थक होने के कारण हेरोदियों के लिए पिलातुस तक आसान पहुंच होती होगी। फरीसी लोग हेरोदियों को दाऊद के सिंहासन पर कब्जा कर लेने वाले मानते थे क्योंकि हेरोदेस एदोमी था न कि विशुद्ध यहूदी (चाहे वह यहूदी बन गया होने का दावा करता था)।[12] फिर भी ये दोनों शक्तिशाली गुट कर देने के अपने प्रश्न लेकर यीशु के विरोध में काम करने के लिए प्रयास करने में एक हो गए।

> यदि यीशु कह देता कि यहूदा में कैसर को कर इकट्ठा करने का अधिकार है, तो हेरोदियों ने तो संतुष्ट हो जाना था, परन्तु फरीसियों ने उसे लोगों के सामने ऐसे आदमी के रूप में पेश करना था जो उनके दमनकारियों का पक्ष लेता है। दूसरी ओर यदि वह कर लेने के रोम के अधिकार को नकार देता, तो हेरोदियों को फिर भी उसे यहूदिया में रोमी अधिकारियों के सामने पेश करने का बहाना मिल जाना था।[13]

विलियम हैंड्रिक्सन ने कहा, ''पांखडियों और मन्दिर के लुटेरों के बीच यह एक अजीब गठबंधन था।''[14]

आयतें 15, 16. स्पष्टतया यीशु के पास कोई धन नहीं होता था। **उनका कपट जानकर** उसने कहा, ''**मुझे क्यों परखते हो? एक दीनार मेरे पास लाओ, कि मैं उसे देखूँ**'' और फिर उसने पूछा, ''**यह छाप और नाम किसका है?**'' इस सिक्के के उन्हीं में से किसी की जेब में से निकला होने के कारण, इसका मतलब यह था कि प्रश्न पूछने वाले लोग स्वयं कैसर के धन का इस्तेमाल कर रहे हैं। लोगों ने उत्तर दिया, ''**कैसर का।**'' इस पर तस्वीर कुख्यात दुराचारी तिब्रयुस कैसर की थी। ''कैसर'' जूलियस का उपयुक्त नाम था और गोद लेने के द्वारा अगस्तुस का; परन्तु तिब्रियुस के बाद यह एक उपाधि बन गई। सिक्के के सामने वाले हिस्से पर ''अगस्तुस के पुत्र, दैवीय अगस्तुस, तिब्रियुस कैसर का'' शब्द थे; और दूसरी ओर ''पोंतिफेक्स मैक्सिमस'' था जो उसके ''रोमी राज्य का महा याजक'' हाने का दावा करता था।[15] उसके सिक्कों को स्वीकार करने का अर्थ हाकिम के अधिकार और शक्ति को मान लेना था। जब कोई इलाका विद्रोह करता तो उनकी पहली कार्यवाही अपने इस्तेमाल के लिए नया सिक्का बनाने की कोशिश होती। राजा की शक्ति को इसी से नापा जाता था कि उसकी मुद्रा की स्वीकृति कितनी है। उसकी

आकृति इसके ऊपर थी, जिसका अर्थ यह था कि एक अर्थ में यह उसकी निजी सम्पत्ति है।

वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे ने इस बात को बड़ी सफ़ाई से कहा है। यीशु का उत्तर कुछ इस प्रकार से था:

> कैसर की तस्वीर उसके सिक्कों पर है, इसका अर्थ यह हुआ कि वे उसके अधिकार से ढाले गए होंगे। इस बात का कि आपके पास ये सिक्के हैं और आप इनका इस्तेमाल करते हैं, संकेत यह है कि आप यह मानते हैं कि उनकी कुछ कीमत है। इसलिए आप कैसर के अधिकार को पहले से मान रहे हैं, नहीं तो आपने उसके पैसों का इस्तेमाल नहीं करना था! पर यह न भूलें कि आपको परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया था इसलिए आपको परमेश्वर के अधिकार में भी रहना आवश्यक है।[16]

आयत 17. यीशु ने उनसे कहा, ''जो कैसर का है वह कैसर को, और जो परमेश्वर का है परमेश्वर को दो।'' तब वे उस पर बहुत अचम्भा करने लगे। किसी को भी, जो सरकार की ओर से मिली लाभों का इस्तेमाल करता है इसके समर्थन के लिए चुकाए जाने वाले कर देने से मना नहीं करना चाहिए। रोमी शासन का एक लाभ प्रसिद्ध सामान्य शांति (*pax Romana*) था जो समुद्री डाकुओं वाले समुद्रों और डाकुओं के राजमार्गों से निकलवाता था। अपने पुलों और सड़क के अपने प्रबन्ध के साथ जिससे व्यापार और संचार को बढ़ावा मिला, रोमी सरकार को प्राचीन जगत में आदर प्राप्त था।[17]

यीशु ने चाहे कर चुकाने का समर्थन किया, परन्तु उसने कहा कि कैसर के सिक्कों के विपरीत लोगों पर परमेश्वर की तस्वीर है और वे परमेश्वर के हैं (उत्पत्ति 1:26, 27)। यीशु ने नागरिक सरकार के बने रहने के अधिकार की अनुमति दी। रोमियों 13:1-6 में पौलुस की शिक्षा यीशु के विचार से बिल्कुल मेल खाती है। यीशु ने संकेत दिया कि उसके चेले सरकार का आदर करें; परन्तु उनकी अधिक निष्ठा परमेश्वर के साथ हो। इसलिए लोगों को अपने विवेक की बात माननी चाहिए और आत्मिक या धार्मिक क्षेत्र में जो सही है वही करना चाहिए। परमेश्वर आज भी सबसे बड़ा राजा है। कोई भी अच्छा यहूदी इस सच्चाई पर बहस नहीं कर सकता, चाहे वह इसे मानता हो या न।

यीशु ने दिखाया कि कैसर के सिक्के पर ''दैवीय अगस्तुस'' शब्द लिखा होना यह अनुमति नहीं था कि कैसर भूतकाल या वर्तमान में ''दैवीय'' थे। कैसर के कर चुकाने के विरोध में चाहे यह मान्य तर्क हो सकता है। फिर भी आरम्भिक कलीसिया को कर चुकाने में कभी कठिनाई नहीं हुई; वे केवल कैसर को ''प्रभु'' (*कुरियोस कैसर*) कहने से इनकार करते थे।

जब हम सरकार से असहमत होते हैं, तो हम मत डालने या अन्य कानूनी साधनों से अपनी नाराज़गी जता सकते हैं; परन्तु हमें कर चुकाते रहना आवश्यक है। हमें ''राजा का सम्मान'' करने की आज्ञा दी गई है (1 पतरस 2:17)। अधिकार का सम्मान न होने पर अराजकता फैल जाएगी; किसी की जान या सम्पत्ति अधिकरण या विनाश से नहीं बचेगी। पुलिस बल सहित सरकार में मज़बूत मसीही प्रभाव का होना आवश्यक है। क्योंकि यह ''भलाई के लिए परमेश्वर का सेवक'' होना है (रोमियों 13:4)।

व्यवस्था के प्रशिक्षित छात्र भी हैरान थे कि वे यीशु के उत्तर का उत्तर कैसे दें। वे पिलातुस

के सामने उस पर आरोप नहीं लगा सकते थे, क्योंकि उसने कर चुकाने की स्वीकृति दी। वे लोगों के सामने उस पर आरोप नहीं लगा सकते थे, क्योंकि न चाहते हुए भी वे स्वयं कैसर के सिक्कों के साथ कर चुकाते थे, और वही कर रहे थे जो यीशु ने करने के लिए बताया। आश्चर्य की बात नहीं है कि **वे उस पर बहुत अचम्भा करने लगे**। तब हो या आज, कोई भी यीशु को ''क्रांतिकारी'' नहीं कह सकता। परन्तु कर चुकाने की इस तैयारी में उनके बीच कुछ लोगों को परेशान कर दिया होगा जिस कारण वे यीशु से पीछे हट गए होंगे।

विवाह और मरने के बाद के जीवन का सदूकियों का प्रश्न (12:18-27)[18]

[18]फिर सदूकियों ने भी, जो कहते हैं कि मरे हुओं का जी उठना है ही नहीं, उसके पास आकर उस से पूछा, [19]''हे गुरु, मूसा ने हमारे लिये लिखा है कि यदि किसी का भाई बिना सन्तान मर जाए और उस की पत्नी रह जाए, तो उसका भाई उसकी पत्नी से विवाह कर ले और अपने भाई के लिए वंश उत्पन्न करे। [20]सात भाई थे। पहला भाई विवाह करके बिना सन्तान मर गया। [21]तब दूसरे भाई ने उस स्त्री से विवाह कर लिया और बिना सन्तान मर गया; और वैसे ही तीसरे ने भी किया। [22]और सातों से सन्तान न हुई। सब के पीछे वह स्त्री भी मर गई। [23]अत: जी उठने पर वह उनमें से किस की पत्नी होगी? क्योंकि वह सातों की पत्नी हो चुकी थी।'' [24]यीशु ने उनसे कहा, ''क्या तुम इस कारण से भूल में नहीं पड़े हो कि तुम न तो पवित्रशास्त्र ही को जानते हो, और न ही परमेश्वर की सामर्थ्य को? [25]क्योंकि जब वे मरे हुओं में से जी उठेंगे, तो वे न विवाह करेंगे और न विवाह में दिए जाएँगे, परन्तु स्वर्ग में दूतों के समान होंगे। [26]मरे हुओं के जी उठने के विषय में क्या तुम ने मूसा की पुस्तक में झाड़ी की कथा में नहीं पढ़ा कि परमेश्वर ने उससे कहा, 'मैं अब्राहम का परमेश्वर, और इसहाक का परमेश्वर, और याकूब का परमेश्वर हूँ'? [27]परमेश्वर मरे हुओं का नहीं वरन् जीवतों का परमेश्वर है; अत: तुम बड़ी भूल में पड़े हो।''

आयत 18. सदूकियों ने अपनी पसंदीदा दलीलों में से एक यीशु के सामने पेश की। मरने के बाद के इस तर्क का उत्तर फरीसियों की ओर से भविष्य की स्थिति के उनके सीमित ज्ञान के कारण प्रभावशाली ढंग से कभी नहीं दिया गया था। पर यीशु पवित्र शास्त्र को जानता और समझ रखता था और केवल वही उनके तर्कों का उत्तर दे सकता था, क्योंकि उसे सब बातों का पता है, यहां तक कि स्वर्ग में हमारे भविष्य का भी।

मरकुस में सदूकियों का नाम केवल यहीं पर मिलता है। मत्ती में उनका उल्लेख सात बार है और लूका में एक बार है, परन्तु यूहन्ना में उनका उल्लेख नहीं है। इस गुट के लोग रईस और घमण्डी होते थे। वे इस संसार और इसकी वस्तुओं से आनन्दित होते थे इसलिए आत्मिक रूप में वे कमज़ोर होते थे। वे कोई बहुत बड़ा दल नहीं थे परन्तु स्पष्टतया धनवान होते थे। कुछ सदूकी याजक होते थे जिनमें से कुछ प्रधान याजक के पद तक पहुंच जाते थे।

सदूकी लोग फरीसियों से बहुत अलग होते थे। वे फरीसियों के नए विचारों का खण्डन करते थे[19] जबकि अपने विश्वासों के लिए तौरेत को बड़ी कड़ाई से मानने का दावा करते थे।

उनका यह भी कहना था कि **मरे हुओं का जी उठना है ही नहीं**। पौलुस ने उनकी शिक्षा को संक्षेप में बताया जब उसने कहा कि उनका माना है कि ''न पुनरुत्थान है, न स्वर्गदूत और न आत्मा है; परन्तु फरीसी इन सब को मानते हैं'' (प्रेरितों 23:8)।

यीशु के प्रश्न पूछने वालों को पता था कि वह मरने के बाद के जीवन को मानता है और सम्भवतया उसके साथ उनके झगड़े का मुख्य कारण यही था। सदूकियों का मानना था कि मरा हुआ व्यक्ति केवल अपनी संतान के द्वारा है जीवित रह सकता है। वे अनश्वरता को नहीं मानते थे। उनका कहना था कि तौरेत में इसके बारे में साफ़ साफ़ नहीं बताया गया। उनका प्रश्न जी उठने के विचार को बेतुका बताने के लिए तैयार किया गया था।

आयतें 19-22. सदूकियों ने यीशु के सामने यह दृश्य रखा: **''हे गुरु, मूसा ने हमारे लिये लिखा है कि यदि किसी का भाई बिना सन्तान मर जाए और उस की पत्नी रह जाए, तो उसका भाई उसकी पत्नी से विवाह कर ले और अपने भाई के लिए वंश उत्पन्न करे। सात भाई थे। पहला भाई विवाह करके बिना सन्तान मर गया। तब दूसरे भाई ने उस स्त्री से विवाह कर लिया और बिना सन्तान मर गया; और वैसे ही तीसरे ने भी किया। और सातों से सन्तान न हुई। सब के पीछे वह स्त्री भी मर गई।''** यह मामला करेवा[20] (विधवा भाभी के साथ विवाह) के यहूदी नियम पर आधारित था (देखें व्यव. 25:5-10)। दो या अधिक भाइयों वाले परिवार में एक अपनी पत्नी से कोई संतान को जन्म दिए बिना मर गया हो, तो उससे छोटे भाई के लिए उस विधवा से विवाह करके अपने मरे हुए भाई के लिए संतान को पालना आवश्यक था।[21] उस बच्चे को मरे हुए का नाम मिलना होता था और वह शारीरिक पिता के बजाय मरे हुए आदमी का कानूनी वारिस होता था। इससे यह पक्का हो जाता है कि परिवार का नाम बना रहेगा और सम्पत्ति परिवार में ही रहेगी। यीशु के समय तक साफ़ तौर पर यह अधिकतर रूढ़िवादी यहूदियों को छोड़ ''कभी इस्तेमाल में न आने वाला नियम'' बन गया था।[22] परन्तु सबको ओनान याद था, जिसे अपने मरे हुए भाई की पत्नी से संतान उत्पन्न करने से इनकार करने के कारण परमेश्वर ने मार डाला था (उत्पत्ति 38:8-10)।

आयत 23. फिर सदूकियों ने पूछा, **''जी उठने पर वह उनमें से किस की पत्नी होगी?''** उनका मामला चाहे बढ़ा चढ़ाकर पेश किया गया हो, परन्तु इसमें एक समस्या का पता चला जिसका अभी तक कोई तर्कसंगत समाधान नहीं मिला था। निश्चय ही उन्हें लगा कि स्वर्ग में उनके प्रिय भाई भी किसी स्त्री पर बहस करते होंगे। उन्हें उम्मीद होगी कि यीशु जी उठने में रूढ़िवादी विचार को या तो नकारेगा या कोई ऐसी बात कहेगा जिसके लिए वे उसकी आलोचना कर सकते थे। उन्हें उससे यह उम्मीद तो बिल्कुल नहीं थी कि वह जी उठने की बात को नकारेगा, परन्तु उन्हें यह उम्मीद थी कि करेवे के नियम के बारे में कुछ गलत बात कहेगा। मरकुस 7:15, 20-23 में उसने शुद्ध और अशुद्ध मांस के नियमों के बारे में कुछ उलट लगने वाली बातें कही थीं।

यीशु के लिए जी उठने के विरोध में सदूकियों के तर्क का खण्डन करना आवश्यक था, क्योंकि उसके सुसमाचार की सारी शिक्षा इसी पर आधारित थी। आत्माओं से अस्तित्व को नकारना परमेश्वर के अस्तित्व को नकारने के जैसा ही है। सदूकियों का बुनियादी अविश्वास मनुष्य की आत्मा के अस्तित्व के साथ सम्बन्धित था। यदि मनुष्य में आत्मा ही न होती तो कोई

जी उठना नहीं हो सकता था।

आयत 24. फरीसियों की तरह सदूकियों ने पवित्र शास्त्र में मिलावट करके भारी गलती की थी। उन्होंने यह मान लिया था कि भविष्य में यदि कोई जीवन है तो वह इसी जीवन के जैसा होगा। परन्तु स्वर्ग पर उठा लिए जाने के बाद यीशु ने पौलुस को यह लिखने के लिए अधिकृत किया कि अनन्तकाल में मसीही लोगों को ''आत्मिक देह'' दी जाएगी (1 कुरि. 15:42-44)। शरीर की आवश्यकताएं चाहे नहीं रहेंगी (1 कुरि. 6:13), परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि महिमा में हम एक-दूसरे को जानते नहीं होंगे। निश्चय ही हम इस जीवन के अपने मित्रों को पहचानते और उनसे प्रेम करते होंगे।

सदूकी लोग पंचग्रंथ को मानते थे, इसलिए यीशु ने उन्हें उसी में से उत्तर दिया। उसने वहीं से आरम्भ किया जहां पर वे थे और वहीं से आगे बढ़ा। अगले जीवन की सदूकियों की मान्यता से उनकी इस कमज़ोरी का पता चलता था कि उन्हें **परमेश्वर की सामर्थ्य** की समझ नहीं थी।

आयत 25. यीशु ने उन्हें उत्तर दिया कि **जब वे मरे हुओं में से जी उठेंगे, तो वे न विवाह करेंगे और न विवाह में दिए जाएँगे, परन्तु स्वर्ग में दूतों के समान होंगे**। चाहे हम स्वर्गदूतों की तरह न नर न मादा होंगे और स्वर्गीय जीवन में हमारे आनन्द के लिए विवाह की आवश्यकता नहीं होगी, फिर भी हम हर पहलू से स्वर्गदूतों की तरह नहीं होंगे। वास्तव में कुछ स्थिति में हम उनका न्याय करेंगे (1 कुरि. 6:3)। मसीह को देखने के समय हम उसके जैसे भी होंगे (1 यूहन्ना 3:1, 2)। सदूकियों को यह पता नहीं था कि परमेश्वर में अपने पवित्र लोगों को जिलाने और उन्हें प्रतापी देहें देने की सामर्थ है जिनमें यौन इच्छा पूरी करने की आवश्यकता न हो।

जब हम परमेश्वर के वचन से दूर हो जाते हैं तो अपने भविष्य के अस्तित्व की वास्तविकता को समझने के हमारे सारे प्रयास बेकार हो जाते हैं। यदि सदूकियों ने परमेश्वर के पूरे वचन का अध्ययन किया होता तो उन्हें 1 राजाओं 17:22 और 2 राजाओं 4:35 में जी उठने के संकेत मिल जाने थे (देखें भजन 133:3; सभो. 3:11)। शमूएल के अपनी मृत्यु के बाद दिखाई देने में यह प्रमाण मिल जाना था कि मृत्यु के बाद भी व्यक्ति का अस्तित्व रहता है (1 शमूएल 28:12-19)। दाऊद को विश्वास था कि वह अपने मरे हुए बच्चे को फिर से देखेगा (2 शमूएल 12:15-23)। बिना मृत्यु को देखे अनन्तकाल में चले जाने वालों के मामले भी उस जीवन के आगे का संकेत देते हैं जिसे हम पृथ्वी पर जानते हैं (उत्पत्ति 5:22-24; 2 राजा. 2:11)।

अय्यूब को बड़ा यकीन था कि वह परमेश्वर को अपने ''शरीर में होकर'' देखेगा (अय्यूब 19:25, 26)। केवल मृत्यु के अंधकार की तराई ''में'' जाने के बजाय उस ''में'' होकर चलने का विचार ही भविष्य के जीवन का संकेत देता है (भजन 23:4)। इसके अलावा दाऊद ने भविष्यद्वाणी की थी ''पवित्र भक्त'' (अर्थात मसीहा) ने कब्र में नहीं रहना था (भजन 16:10; देखें प्रेरितों 2:27)। इससे सम्बन्धित और वचन अनन्त जीवन का संकेत देते हैं।[23] बेशक सदूकियों की केवल पंचग्रंथ पर निर्भरता ने इस सम्भावना को निकाल दिया कि वे इन बाद के वचनों से सीखें।

आयतें 26, 27. यीशु के सबसे अद्‌भुत उपदेश वे हैं जिनमें उसने पुराने नियम में से उन सच्चाइयों को दिखाया जिन पर पहले कभी किसी ने ध्यान नहीं दिया था। यीशु जानता था कि

सबसे आसान उत्तर ही सबसे बढ़िया उत्तर होता है। यहां पर वह परमेश्वर के वचनों की ओर लौट गया, इस बार उसने निर्गमन 3:6 से, **झाड़ी की कथा में** से उद्धृत किया। जो कुछ मूसा की पुस्तक में लिखा गया था वह परमेश्वर के द्वारा बोला गया था: ''**मैं अब्राहम का परमेश्वर, और इसहाक का परमेश्वर, और याकूब का परमेश्वर हूँ।**'' फिर यीशु ने क्रिया शब्द ''होने'' के वर्तमानकाल पर अपनी दलील दी। ये पुरखे परमेश्वर के मूसा से ये बात कहने के समय बहुत पहले मर चुके थे, परन्तु परमेश्वर अभी भी उनका परमेश्वर था। वह हमेशा **जीवतों का परमेश्वर है**, इसलिए यहूदियों के लिए यह मानना आवश्यक था कि वे पुरखे अभी भी आत्मा में जीवित होंगे, चाहे उनकी देहें बहुत पहले मर चुकी थीं।

यह इस बात को दिखाता है कि परमेश्वर धर्मी मुर्दों की परवाह करता है। यदि उनका अस्तित्व न होता तो परमेश्वर ने उनका ''परमेश्वर जो *है ही नहीं*''होना था।[24] भविष्य के जीवन में पुरखाओं का विश्वास इब्रानियों की पुस्तक के तर्कों के लिए आम तौर पर माना जाता होगा। उदाहरण के लिए, इब्रानियों 11:19 में उस पुस्तक के लेखक ने इसहाक ''दृष्टांत की रीति पर ... फिर मिला'' होने की बात की।

यीशु का तर्क देना जी उठने के तथ्य को तो साबित नहीं करता, परन्तु यह मरने के बाद उन आत्माओं के होने के अस्तित्व को अवश्य दिखाता है। इसलिए जी उठने को सदूकियों की कल्पना के असम्भव होने के बजाय वास्तविक सम्भावना के रूप में देखा जाए। बेशक मसीह के जी उठने के द्वारा, आज हमारे पास उससे कहीं बड़ा प्रमाण है: ''परन्तु सचमुच मसीह मुर्दों में से जी उठा है, और जो सो गए हैं, उन में पहिला फल हुआ'' (1 कुरि. 15:20)।

सदूकियों की गलती के कारण यीशु को उन्हें बताना पड़ा कि ''**तुम बड़ी भूल में पड़े हो।**'' इसे इस प्रकार से भी कहा जा सकता है, ''तुम अपने आपको धोखा दे रहे हो!''[25] बिना इस विश्वास के कि परमेश्वर अनन्त जीवन देता है, लोग सचमुच में आशाहीन और दयनीय अवस्था (देखें 1 कुरि. 15:19)। विश्वास दिलाने वाले प्रकाशन के बाद भी हमें उसका जो परमेश्वर ने हमारे लिए इस जीवन के बाद तैयार किया है, इतना ज्ञान नहीं है में हैं (देखें 1 यूहन्ना 3:2)। परन्तु यीशु ने दावा किया कि परमेश्वर के साथ व्यक्ति के सही सम्बन्ध को मृत्यु भी तोड़ नहीं सकती।

मरने के बाद के जीवन में विश्वास न करना बड़ी गलती है, क्योंकि मरने के बाद के जीवन और न्याय की चिंता न करने से परमेश्वर में विश्वास करने की प्रेरणा नहीं मिलती। उसमें विश्वास बिल्कुल आवश्यक है (इब्रा. 11:6)। जीवन में वास्तविक महत्व का एकमात्र प्रश्न यह है कि ''क्या मैं परमेश्वर से मिलने के लिए तैयार हूं?''

सबसे बड़ी आज्ञा (12:28-34)[26]

[28]शास्त्रियों में से एक ने आकर उन्हें विवाद करते सुना, और यह जानकर कि उसने उन्हें अच्छी रीति से उत्तर दिया, उससे पूछा, ''सब से मुख्य आज्ञा कौन सी है?'' [29]यीशु ने उसे उत्तर दिया, ''सब आज्ञाओं में से यह मुख्य है: 'हे इस्राएल सुन! प्रभु हमारा परमेश्वर एक ही प्रभु है, [30]और तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे मन से, और अपने सारे प्राण

से, और अपनी सारी बुद्धि से, और अपनी सारी शक्ति से प्रेम रखना।' [31]और दूसरी यह है, 'तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना।' इससे बड़ी और कोई आज्ञा नहीं।'' [32]शास्त्री ने उससे कहा, ''हे गुरु, बहुत ठीक! तू ने सच कहा कि वह एक ही है, और उसे छोड़ और कोई नहीं। [33]और उससे सारे मन, और सारी बुद्धि, और सारे प्राण, और सारी शक्ति के साथ प्रेम रखना; और पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना, सारे होमबलियों और बलिदानों से बढ़कर है।'' [34]जब यीशु ने देखा कि उसने समझ से उत्तर दिया, तो उससे कहा, ''तू परमेश्वर के राज्य से दूर नहीं।'' और किसी को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ।

आयत 28. मत्ती 22:34, 35 बताता है कि जब फरीसियों ने देखा कि सदूकियों कैसे लाजवाब कर दिया गया है तो उन्होंने अपना सबसे चुनौती भरा प्रश्न ''**सबसे मुख्य आज्ञा कौन सी है?**'' लेकर ''व्यवस्थापक'' को भेज दिया। ''व्यवस्थापक'' वकील या अभिवक्ता जैसा नहीं होता था। वह व्यवस्था की व्याख्या करने में निपुण होता था। अन्य शब्दों में, उन्होंने यीशु से अपना सबसे बढ़िया प्रश्न पूछने के लिए अपने सबसे बढ़िया आदमी को उसके पास भेजा।

यह हो सकता है कि बाद में फरीसियों में से बहुत से शास्त्री मसीहियत में आ गए थे। प्रेरितों 6:7 उन याजकों की बात करता है जिन्होंने विश्वास कर लिया था। इन याजकों/शास्त्रियों को पवित्र शास्त्र का प्रशिक्षण मिला हुआ था। परन्तु सम्भवतया अधिकतर मौखिक परम्परागत नियमों में, जिन्हें फरीसी अच्छी तरह से नहीं जानते थे।

कुछ यहूदी बलिदान देने की आज्ञा को सबसे बड़ी आज्ञा मानते थे, जबकि औरों का मानना था कि शुद्ध किए जाने की आज्ञा सबसे आवश्यक है। स्पष्ट है कि कुछ का विचार था कि ''ताबीज़'' पहनना सबसे आवश्यक है (मत्ती 23:5)।

रब्बी सिमले के अनुसार:

> मूसा को छह सौ तेरह नियम बताए गए थे, जिनमें सौर दिनों [वर्ष में] की गिनती से मेल खाते तीन सौ पैंसठ नकारात्मक नियम और मनुष्य के शरीर[27] के अंगों की गिनती[28] के मेल खाते दो सौ अड़तालीस सकारात्मक नियम थे।

यीशु चाहे जो भी उत्तर देता कुछ लोग किसी और आज्ञा को सबसे बड़ा होना कह सकते थे।

आयतें 29-31. हमेशा की तरह यीशु ने व्यवस्थाविवरण 6:4, 5 (शेमा[29]) और लैव्यव्यवस्था 19:18 में से उद्धृत करते हुए उनके प्रश्न का उत्तर झट से दे दिया।[30] उसने कहा, ''**सब आज्ञाओं में से यह मुख्य है: 'हे इस्राएल सुन! प्रभु हमारा परमेश्वर एक ही प्रभु है, और तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे मन से, और अपने सारे प्राण से, और अपनी सारी बुद्धि से, और अपनी सारी शक्ति से प्रेम रखना।' और दूसरी यह है, 'तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना।' इससे बड़ी और कोई आज्ञा नहीं।**'' वह घोषणा कर रहा था कि जीवन की बाकी की सब बातें परमेश्वर से प्रेम करने और अपने पड़ोसी से प्रेम करने से सुलझ सकती हैं। यीशु को परमेश्वर के व्यवस्था के पूरे उद्देश्य का आधार बहुत पहले से पता था और वह इसी को पूरा करने के लिए आया था। व्यवस्था का अंत भविष्यद्वाणी किए हुए अब्राहम के ''वंश'' (संतान) में देखा जाना था (गला. 3:19)।

स्पष्टतया, यीशु के समय में भी सुबह शाम की प्रार्थनाओं में प्रतिदिन शेमा में से पढ़ा जाता

था। इसका इस्तेमाल आराधनालय की साप्ताहिक आराधना में भी होता था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शेमा की प्रासंगिकता को समझा भी जाता था। शायद इससे पहले मूर्तिपूजा के विरोध में और बाद में मसीही लोगों के विरोध में बचाव के रूप में पढ़ा जाता था। यह बाइबल के सबसे प्रसिद्ध भागों में से था परन्तु फिर भी आम तौर पर इसे सबसे महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। रब्बियों में से कुछ अनुभवी विद्वान इसे सबसे बड़ी आज्ञा मानते हो सकते हैं।

हम परमेश्वर से प्रेम कैसे रखें? उसने हमें बताया है: ''अपने सारे मन से,'' यानी अपनी सारी भावनाओं के साथ; ''अपने सारे प्राण से [ψυχή, *psuchē*]'' या ''प्राण'' में जैसा कि 10:45 में इसका अनुवाद हुआ है। हम उससे इतना प्रेम रखें कि उसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार रहें या उसकी सेवा के लिए अपना जीवन दे दें। उसने यह भी कहा कि हम उससे ''अपनी सारी बुद्धि'' या समझ से प्रेम रखें। अपनी स्वयं प्राप्तियों पर गर्व करने के बजाय हम परमेश्वर की महिमा को ढूंढ़ें। यदि कोई लगन से और लगातार परमेश्वर के वचन का अध्ययन नहीं करता है तो वह उससे अपनी सारी बुद्धि से प्रेम रखने का दावा कैसे कर सकता है? परमेश्वर की इच्छा हमारे अंदर सबसे आगे होनी आवश्यक है। इसके अलावा हमारे लिए उससे ''अपनी सारी शक्ति से'' यानी जो भी शक्ति या ताकत हमारे अंदर है, उससे उसे प्रेम करने को कहा गया है। हमारी शारीरिक शक्ति और मानसिक बल का इस्तेमाल पूरे संयम के साथ परमेश्वर के लिए इस्तेमाल होना आवश्यक है।

इस प्रकार से परमेश्वर से प्रेम रखने पर हम उसकी सब आज्ञाओं को मान रहे होंगे। पुराने नियम के तहत भी व्यवस्था का लक्ष्य परमेश्वर और अपने पड़ोसियों से प्रेम रखना ही था। इसलिए जैसा कि यीशु ने संक्षेप में बताया, यह आज्ञा परमेश्वर की व्यवस्था को पूरा करती है (रोमियों 13:8-10)। एक अन्य अवसर पर, यीशु ने कहा, ''यदि तुम मुझ से प्रेम रखते हो, तो तुम मेरी आज्ञाओं को मानोगे'' (यूहन्ना 14:15)। प्रेम हमें हर प्रकार से अपने पड़ोसियों के लिए अच्छा बनने की प्रेरणा देगा, जिससे हम उनके लिए बहुत बढ़िया सोच सकें। अपने पड़ोसी से सचमुच में अपने समान प्रेम रखना व्यक्ति को उस पड़ोसी के विरोध में पाप करने से रोकेगा।

लूका 10:25-37 में व्यवस्थापक के साथ अपनी चर्चा में यीशु ने ''मेरा पड़ोसी कौन है?'' के प्रश्न के जवाब में एक दृष्टांत बताया। वह कहानी जिसका इस्तेमाल उसने किया, यानी धन्य सामरी की कहानी, उसकी सब प्रसिद्ध कहानियों में एक बन गई है। परन्तु इस कहानी में थोड़े से अलग प्रश्न ''मैं किसका पड़ोसी बनूं?'' का उत्तर दिया गया है। यीशु ने पड़ोस में रहने वालों के बजाय ''पड़ोसी'' की अवधारणा में और शामिल करने के लिए इसे विस्तार दिया। यदि हम उनके पड़ोसी हैं जिनके हमें होना चाहिए, तो हम वह प्रश्न नहीं पूछेंगे जो शास्त्री ने पूछा क्योंकि; अवसर मिलने पर हम अपने आस पास के हर प्रकार के लोगों की सेवा करेंगे। हमेशा की तरह यीशु ने एक प्रसिद्ध नियम का हवाला दिया, परन्तु इसकी व्याख्या वैसे की जैसे कि परमेश्वर ने मूल में चाही थी, न कि वर्तमान यहूदी व्याख्या। ''यीशु के शत्रुओं को भी उसकी शिक्षा के अलग होने की समझ होती थी।''[31]

आयतें 32, 33. इस शास्त्री को यीशु की बात समझ में आ गई थी, जिस कारण उसने कहा, ''**हे गुरु, बहुत ठीक! तू ने सच कहा कि वह एक ही है, और उसे छोड़ और कोई नहीं।**'' स्पष्टया यीशु का उत्तर बिल्कुल स्पष्ट था। इस संदर्भ में व्यवस्थापक बिना आपत्ति के लिए

सहमत होने को विवश था। वह परमेश्वर के ''एक'' होने की शिक्षा से सहमत था और उसने कहा कि उससे **प्रेम रखना, सारे होमबलियों और बलिदानों से बढ़कर है**। इस प्रश्न पूछने वाले को दिए उसके उत्तर के आधार पर, हम कह सकते हैं कि प्रभु ने उसे परमेश्वर से वचन के गम्भीर छात्र के रूप में देखा।

रब्बी लोग प्रेम के महत्व की शिक्षा देते थे, परन्तु कोई मन्दिर की पृष्ठभूमि में इन दोनों आज्ञाओं को नहीं मिलाता था (या बहुत कम मिलाते थे)। परमेश्वर के लिए प्रेम रखना और दूसरों के लिए प्रेम रखना और सिखाना और अच्छी तरह से यहूदियों को परमेश्वर की इच्छा लागू करने वाला होना था। नबियों ने भी औपचारिक बलिदान से ऊपर ''दया'' पर ज़ोर दिया था (होशे 6:6; KJV)।

व्यवस्था, मन्दिर और इस्राएलियों का विशेष चयन यहूदी शिक्षा के तीन बड़े भाग थे। जब पौलुस पर इन तीनों का विरोध करने का आरोप लगा तो भीड़ द्वारा उस पर हमला कर दिया गया था (प्रेरितों 21:28)। मन्दिर और इस्राएलियों के विशेष चयन के सम्बन्ध में यीशु को परखा गया था। यहां पर उसे व्यवस्था की सबसे बड़ी शिक्षा पर उसकी रूढ़िवादिता के सम्बन्ध में परखा जा रहा था। इस शास्त्री को इतनी समझ थी कि वह यह मान ले कि यीशु ने परीक्षा बिना किसी गलती के पास कर ली है। कानूनी तौर पर अपनी प्रशिक्षित समझ के साथ, उसने यीशु के शब्दों को धीरे-धीरे और ज्यों का त्यों दोहराया। उसे मालूम था कि यीशु ने स्पष्ट बिन्दु पर ध्यान रखा था।

आयत 34. शास्त्री ने **समझ से उत्तर दिया** था, जिस कारण यीशु ने उत्तर दिया, ''**तू परमेश्वर के राज्य से दूर नहीं।**'' यीशु की बात से 1 शमूएल 15:22 के शब्द ध्यान में आते हैं, जहां कहा गया कि इस्राएलियों की आज्ञाकारिता परमेश्वर को चढ़ाए गए किसी भी बलिदान से बढ़कर थी। शास्त्री ने यीशु की समझ को माना और पहले ही वह इस निष्कर्ष तक पहुंच गया होगा। यदि ऐसा है तो वह यह मान रहा था कि व्यवस्था के सम्बन्ध में यीशु की समझ और ज्ञान उसके जैसा ही था। वह सच्चाई का सचमुच खोजी था, इसलिए वह परमेश्वर के राज्य के बहुत निकट था। वह उनकी तरह नहीं था जो यीशु को फंसाने की कोशिश कर रहे थे। यीशु ने स्पष्ट उत्तर दिया था और शास्त्री और कोई उलझन में नहीं पड़ना चाह रहे थे, इसलिए **और किसी को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ**। पराजय और निराशा को मानते हुए यहूदी पुरोहितों ने यह तय किया कि वे उसे मरवा देने की और जल्दी करें।

यीशु, प्रभु भी और मसीह भी (12:35-37)[32]

[35]फिर यीशु ने मन्दिर में उपदेश करते हुए यह कहा, ''शास्त्री कैसे कहते हैं कि मसीह दाऊद का पुत्र है? [36]दाऊद ने आप ही पवित्र आत्मा में होकर कहा है: 'प्रभु ने मेरे प्रभु से कहा, ''मेरे दाहिने बैठ, जब तक कि मैं तेरे बैरियों को तेरे पाँवों की पीढ़ी न कर दूँ।''' [37]दाऊद तो आप ही उसे प्रभु कहता है, फिर वह उसका पुत्र कहाँ से ठहरा?'' और भीड़ के लोग उसकी आनन्द से सुनते थे।

आयतें 35-37. मन्दिर में उपदेश देते देते, यीशु ने पूछा, ''**शास्त्री कैसे कहते हैं कि मसीह दाऊद का पुत्र है?**'' (12:35)। अपने प्रश्न पूछने वालों को उस निर्णय का सामना करने

के लिए, जिसका हमें भी सामना करना आवश्यक है, जो कि संक्षेप में यह है कि ''यीशु कौन है?'' विवश करते हुए उसने परिस्थिति पलट दी। मत्ती 22:41 कहता है कि यीशु द्वारा एक के बाद एक प्रश्न उठाए जाने पर फरीसी अभी भी इकट्ठा थे। उसने यूहन्ना के अधिकार का प्रश्न पूछने से आरम्भ किया था (मरकुस 11:30), और उन्होंने जवाब देने से इनकार कर दिया था। उसने उतनी ही कठिन चुनौती के साथ खत्म किया। यीशु आम तौर पर उससे पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर तुरन्त दे देता था, चाहे वे निष्कपटता से हों या न। वह अपने और यूहन्ना के अधिकार का स्रोत बता सकता था, परन्तु उसने उत्तर देने से इनकार कर दिया क्योंकि उन्होंने इसे मानना नहीं था।

इस अंतिम प्रश्न को रखने का यीशु का उद्देश्य यह दिखाना था कि उनके उसकी हत्या करने की योजना बनाने से पहले, यहूदियों के इन अगुओं को मसीहा के सचमुच में महान होने को समझ लेना आवश्यक था जिसकी राह देखने का वे दावा करते थे। वे दाऊद समान मसीहा के आने की उम्मीद कर रहे थे, जिसने उनके शत्रुओं को हराकर उन्हें रोम की उनकी आर्थिक और राजनैतिक दासता से छुड़ाना था। यदि वह ''दाऊद का पुत्र'' होता तो निश्चय ही वह वैसे कर सकता था जैसे दाऊद ने किया था और उन्हें उनके शत्रुओं पर विजय दिला सकता था! मरकुस 12:35 को समझने के लिए, हमें यह जानना आवश्यक है कि उनके लिए ''मसीह'' कोई व्यक्तिगत नाम नहीं बल्कि एक पद था। इब्रानी शब्द ''मसायाह'' (מָשִׁיחַ, *Mashiach*) और उसका यूनानी समानांतर शब्द ''ख्रिस्त'' (Χριστός, *Christos*) परमेश्वर के अभिषिक्त को दर्शाता है। यहूदियों ने यह तो मान लिया कि मसीहा ने दाऊद का पुत्र होना था (देखें मत्ती 22:43), परन्तु उन्हें इसका अर्थ केवल इतना समझ में आया कि वह दाऊद की वंशावली में से है।[33] उन्हें यह समझ में नहीं आया कि मसीहा दाऊद का प्रभु कैसे हो सकता था। यहां पर यीशु ने इस समझ को दिखाया कि पिता और पुत्र दोनों ही स्वर्ग के सिंहासन पर अधिकारी हैं।[34] उसने कहा,

> '''**प्रभु ने मेरे प्रभु से कहा, ''मेरे दाहिने बैठ, जब तक कि मैं तेरे बैरियों को तेरे पाँवो की पीढ़ी न कर दूँ**''''' (12:36; देखें भजन 110:1)।

नये नियम के बहुत से वचन यीशु को दाऊद की संतान के रूप में दिखाते हैं (मत्ती 1:1; लूका 3:23-31)। परन्तु शास्त्रियों ने ''दाऊद का पुत्र'' (υἱὸς Δαυίδ, *uios Dauid*) वाक यांश को इसके राजनैतिक अर्थों के साथ उलझा दिया था। परमेश्वर ने मसीहा के लिए कभी नहीं चाहा कि वह राजनैतिक अधिकार को दिखाए। यीशु ने इन धार्मिक अगुओं को यह दिखाने की कोशिश की कि योद्धा मसीहा का विचार जिसने सांसारिक साम्राज्य स्थापित करना था, गलत था।[35] **''दाऊद तो आप ही उसे प्रभु कहता है, फिर वह उसका पुत्र कहाँ से ठहरा?''** (12:37)। दाऊद पूर्वज था जिस कारण यहूदी सोच यह मांग कर सकती थी कि वह अपने ''पुत्र'' से बड़ा है। यदि ऐसा था, तो दाऊद उसे ''प्रभु'' कैसे कह सकता था? मसीह के लिए दाऊद का ''प्रभु'' होने के लिए उसका दाऊद को बड़ा होना आवश्यक था।

यहां पर यह मानना आवश्यक नहीं है कि यीशु दाऊद से बड़ा होने का दावा कर रहा था क्योंकि वह केवल इतना दिखा रहा था कि मसीहा ने बड़ा होना था। यह कैसे हो सकता था?

उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं था, क्योंकि वे मसीहा/ख्रिस्तुस को मनुष्य ही मानते थे। यीशु ने उनके सामने एक पहले रख दी थी जिसका उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता था जब तक मसीह को मनुष्यों से बढ़कर न देखा जाए।

धार्मिक अगुओं ने यीशु को झगड़े में उलझाना चाहा था और लोगों को उसे फंसाने के उनके प्रयासों को उसके होशियारी से नाकाम करना अच्छा लगता था।[36] फरीसी लोग यह नहीं समझा पाए कि दाऊद के पुत्र को ''प्रभु'' कैसे कहा जा सकता था, क्योंकि उन्होंने मसीह के परमेश्वर होने को नहीं माना (देखें मत्ती 22:45, 46)। उनकी सहायता के लिए, यीशु ने ज़ोर देकर कहा कि दाऊद ने **पवित्र आत्मा** के द्वारा यह कहा था, और भजन लिखने वाले के शब्द ईश्वरीय प्रेरणा से दिए गए थे। फरीसी मान गए होंगे कि दाऊद को परमेश्वर की प्रेरणा थी और वे समझ गए होंगे कि यीशु केवल उन्हें दिखाने के लिए कि बातें नहीं बना रहा था वह मनुष्य से बढ़कर मसीहा है। वास्तव में यह नये नियम में बताई गई विश्वास की बुनियादी बात है। बाइबल पर विश्वास करने वाले के लिए पुराने और नये दोनों नियमों के परमेश्वर की प्रेरणा से होने को मानना आवश्यक है, तभी उसकी समझ में आ सकता है कि यीशु मनुष्य होने से बढ़कर है। दाऊद को भजन 110:1 में लिखे शब्दों को लिखने के समय, प्रेरणा पवित्र आत्मा की ओर से दी गई थी।

यीशु द्वारा दिए गए इस ज़दर्बस्त तर्क का खण्डन करने के प्रयास में, रब्बियों ने यह बहस की कि भजन 110 मसीहा से जुड़ा भजन नहीं था। यह इनकार करते हुए कि इसे दाऊद द्वारा लिखा गया था, कइयों ने दावा किया होगा कि इसे अब्राहम या हिज़कियाह द्वारा लिखा गया था।

पिन्तेकुस्त वाले दिन तीन हज़ार से अधिक सुनने वालों को यह समझाने के लिए कि जिस यीशु को उन्होंने क्रूस पर चढ़ाया था वही प्रभु था, पतरस ने यही हवाला दिया था (प्रेरितों 2:34, 35)। इसके परमेश्वर की प्रेरणा से होने का पतरस का निष्कर्ष था। उसने कहा, ''अत: अब इस्राएल का सारा घराना निश्चित रूप से जान ले कि परमेश्वर ने उसी यीशु को जिसे तुम ने क्रूस पर चढ़ाया, प्रभु भी ठहराया और मसीह भी'' (प्रेरितों 2:36)। मसीहा के लिए दाऊद से बड़ा होने का एकमात्र ढंग यह था कि वह दाऊद के पुत्र से बड़ा हो।

मरकुस 12:35-37 में यीशु के सुनने वाले यदि उस सच्चाई को मान लेते, तो उन्हें मसीहा के ईश्वरीय होने को मानना पड़ना था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यहूदियों के साथ मसीह के परमेश्वर होने का बचाव करने की चर्चाओं में आरम्भिक मसीही भजन 110 का इस्तेमाल बार-बार किया करते थे। फरीसी लोग इसे अपनी पूर्वधारणाओं के साथ नहीं मिला सकते थे। इसलिए उन्हें एक विकल्प दिखाई दिया कि वह यीशु को मरवा डालें। उनके पहले से ठहराए हुए विचारों ने उन्हें स्पष्ट सच्चाई को जब उनके अपने धर्मशास्त्र में से दिखाए जाने से मानने से दूर रखा। आज लोग उसी कारण से स्पष्ट शिक्षा को नकारते हैं।

मसीह के स्वर्ग में परमेश्वर के साथ मिलकर राज करने का विचार मसीही लोगों के लिए बहुत प्रेरित करने वाला है। हम यह भरोसा कर सकते हैं कि उसके सब शत्रुओं को पराजित कर दिया जाएगा। कई बार चाहे ऐसा लगता है कि मसीह के कार्य कुचला जा रहा है, परन्तु हमेशा ऐसा नहीं होगा। मसीह राजा बनकर राज करता है!

अध्याय 12 को ''प्रश्नों का अध्याय'' कहा गया है क्योंकि ''लिखे गए सोलह प्रश्नों में से यहूदी अगुओं ने पांच पूछे और यीशु ने ग्यारह पूछे।''[37] उन्होंने आरम्भ यह कहते हुए किया कि

उसे अधिकार कहां से मिला, और लगा कि यीशु ने उन्हें उत्तर देने से इनकार कर दिया। यदि वे ईमानदार होते और उसे दाऊद के वंश से आने वाला मसीहा मान लेते, तो उन्हें समझ में आ जाना था कि उसे अधिकार कहां से मिला। ऐसा दिखाते हुए कि उन्हें उत्तर नहीं दिया गया, यीशु ने उत्तर दे दिया ताकि हर वास्तविक विश्वासी को सच्चाई पता चल सके।

भीड़ के लोग उसकी आनन्द से सुनते थे (12:37)। यह बात सम्भवतया 12:35-37 के साथ-साथ 12:38-40 पर लागू होती है।[38] यह हेरोदेस से यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को उसक द्वारा इस्तेमाल की गई अभिव्यक्ति के जैसा ही है (6:20)। चाहे वह यूहन्ना को सुना करता था, परन्तु फिर भी उसने उसका सिर कटवा दिया, जो कि उसकी कमज़ोरी और परमेश्वर की सच्चाई के प्रति उसकी अविश्वसनीयता को दिखाता है। थोड़ी देर बाद में यीशु को क्रूस पर चढ़ाए जाने के लिए कहे जाने पर यीशु के सुनने वालों में से कुछ लोग ऐसी ही कमज़ोरी का शिकार हुए होंगे।[39]

एक और सम्भावना यह है कि इन लोगों को यह जानकार आनन्द मिलता था कि उनका मसीहा दाऊद से बड़ा है। बेशक इससे उन्हें अपने रोमी दमनकारियों पर और बड़ी विजय की आशा बढ़ती थी।[40]

साधारण लोग ''आनन्द से उसकी सुनते थे'' (KJV), जबकि फरीसी छोड़कर चले गए थे। जैसा कि आम तौर पर होता था, साधारण लोगों को यीशु की बातें सुनना अच्छा लगता था और वे अपवाद ढूंढ़े बिना, सादगी के साथ उन्हें मान लेते थे। यह इस बात को दिखाता है कि यीशु के जीवन के अंतिम सप्ताह में भी, लोग (विशेषकर गलील से उसके पीछे आने वाले) उसकी सुनने को उत्सुक थे। यह हमें आम तौर पर हैरान कर देता है कि साधारण लोग सच्चाई को कितनी सफाई से देख लेते थे जबकि धार्मिक कहलाने वाले लोगों को स्पष्ट तर्क और सच्चाई दिखाई नहीं देती थी। कुछ लोगों, विशेषकर यहूदिया के लोगों ने आंखें मूंदकर महासभा की बात मान ली और यीशु को मार डाले जाने के लिए कहा।

शास्त्रियों का आडम्बर (12:38-40)[41]

[38]उसने अपने उपदेश में उनसे कहा, ''शास्त्रियों से चौकस रहो, जो लम्बे-लम्बे चोगे पहिने हुए फिरना और बाज़ारों में नमस्कार, [39]और आराधनालयों में मुख्य मुख्य आसन और भोज में मुख्य मुख्य स्थान भी चाहते हैं। [40]वे विधवाओं के घरों को खा जाते हैं, और दिखाने के लिये बड़ी देर तक प्रार्थना करते रहते हैं। ये अधिक दण्ड पाएँगे।''

आयतें 38, 39. ऐसा लगता है कि यीशु सीधे उस विषय पर बात कर रहा है जिससे परमेश्वर और अपने पड़ोसियों के लिए प्रेम करने और मसीह को प्रभु मानने से बचना आवश्यक है। मत्ती 23:1-36 यीशु द्वारा शास्त्रियों और फरीसियों के कपटपूर्वक व्यवहार की भर्त्सना का पूरा विवरण देता है। यहां उसने कहा, **शास्त्रियों से चौकस रहो, जो लम्बे-लम्बे चोगे पहिने हुए** रहते हैं (12:38)।[42] दिखावा करना उनका उद्देश्य था यानी उन्हें आराधनालयों में और पर्वों में मुख्य मुख्य आसन अच्छे लगते थे और पवित्र होने का दिखावा करते हुए, वे लम्बी लम्बी प्रार्थनाएं करते थे (12:39, 40)। रब्बियों से प्रतिदिन एक घण्टा प्रार्थना करने और, उससे एक

घण्टा पहले और आधा घण्टा बाद तक ध्यान लगाने की उम्मीद की जाती थी।[43] दिखने में धर्मी और पवित्र ये लोग विधवाओं के घर हड़पने की चालें चलते रहते थे! यीशु ने इसे कपट कहकर उनकी निंदा की।

शास्त्री (फरीसियों की तरह) कोई सम्प्रदाय नहीं थे, क्योंकि शस्त्री होना एक व्यवसाय था। परन्तु बहुत से शास्त्री फरीसी होंगे। लोगों के सामने यीशु द्वारा डांटे जाने पर शास्त्री और विशेषकर फरीसी परेशान हो गए होंगे, जिन्हें बाहरी आडम्बर बहुत अच्छा लगता था (12:37, 38)। यीशु ने बड़े-बड़े तावीज़ों (आयतें लिखीं डिब्बियां) के विरोध में कहा जिन्हें वे अपनी भक्ति का दिखावा करने के लिए पहनते थे (मत्ती 23:5)। सम्भव है कि ये ''विधि विशेषज्ञ'' परमेश्वर की विशेष प्रजा में अपने स्थान और व्यवस्था के अपने ज्ञान का दिखावा करने के लिए झालरें भी पहनते थे (देखें गिनती 15:38)। उनका पहरावा उन्हें दूसरे लोगों से अलग (और अधिक महत्वपूर्ण) दिखाता होगा।

इसके अलावा ये अगुवे **बाज़ारों में नमस्कार** भी चाहते थे (12:38); यानी उन्हें ''रब्बी'' कहलवाना अच्छा लगता था जिसका अर्थ है ''मेरे महाराज'' या ''मेरे गुरु'' (मत्ती 23:7, 8)। **भोज** में भी वे **मुख्य मुख्य स्थान** चाहते थे (12:39)। उन्हें **आराधनालयों में मुख्य मुख्य आसन** अच्छे लगते थे (12:39)। प्रमुख स्थान लोगों की ओर मुंह करके सामने वाली जगह होते थे। वहां बैठने से लोगों से वाह वाह लेने की चाह रखने वाले हर किसी की नज़र में होते थे। दावतों में आदर दिए जाने वाले हिसाब से सीटें होती थीं जिसमें आदरणीय व्यक्ति की सीट मेज़बान के बिल्कुल पास होती थी। लूका 14:7-11 में यीशु ने सिफारिश की कि बुलाए हुए महिमान नीचे बैठने के लिए कहकर शर्मिंदा होने से बचने के लिए निचली सीटों पर बैठें। घमण्डी और अहंकारी लोगों का अभिमान तोड़ा जाना आवश्यक है।

आयत 40. जब कोई देख न रहा हो तो ये धार्मिक अगुवे **विधवाओं के घरों को खा जाते** थे। इस अध्याय में आगे एक कंगाल विधवा का उल्लेख है, शायद इस अध्याय में बताई गई उसकी निष्कपटता और उदारता को दिखाने के लिए। यहूदियों को बताया जाता था कि हर रब्बी के पास एक व्यवसाय होना चाहिए चाहे रब्बी की सहायता करने से बढ़कर आदर योग्य कोई और बात नहीं थी। कुछ फरीसी इस सहायता का लाभ उठाते और वास्तव में कंगाल विधवाओं के घरों पर कब्ज़ा कर लेते। शास्त्री भी **बड़ी देर तक प्रार्थना करते थे**, जो कि सच्चे दिल से नहीं बल्कि केवल **दिखाने के लिए** होती थीं।

यीशु ने संकेत दिया कि न्याय के दिन अधिक और कम दण्ड दिए जाएंगे (देखें मत्ती 11:20-22), और यह पक्का लगता है कि उस दिन धार्मिकता के लिबास में शैतान की सेवा करने वालों से बढ़कर ''सूर और सैदा की दशा अधिक सहने योग्य होगी।'' यीशु ने कहा कि वे **अधिक दण्ड पाएँगे**। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यीशु ने उन फरीसियों को जो अपने चेलों/मत धारणा करने वालों को ''अपने से दूना नारकीय'' बनाते थे, मत्ती 23:15 में ''हाय'' कही। उसने बताया कि व्यक्ति को परमेश्वर के सामने ग्रहणयोग्य ऊंचा रुतबा, अच्छे कपड़े या धार्मिकता के दिखावटी काम नहीं बल्कि उसका व्यवहार बनाता है।

कंगाल विधवा का दान (12:41-44)[44]

[41]वह मन्दिर के भण्डार के सामने बैठकर देख रहा था कि लोग मन्दिर के भण्डार में किस प्रकार पैसे डालते हैं; और बहुत से धनवानों ने बहुत कुछ डाला। [42]इतने में एक कंगाल विधवा ने आकर दो दमड़ियाँ, जो एक अधेले के बराबर होती हैं, डालीं। [43]तब उसने अपने चेलों को पास बुलाकर उन से कहा, ''मैं तुम से सच कहता हूँ कि मन्दिर के भण्डार में डालने वालों में से इस कंगाल विधवा ने सबसे बढ़कर डाला है; [44]क्योंकि सब ने अपने धन की बढ़ती में से डाला है, परन्तु इसने अपनी घटी में से जो कुछ उसका था, अर्थात् अपनी सारी जीविका डाल दी है।''

आयतें 41-44. यह कहानी यीशु की पिछली शिक्षा को समझाते हुए इसकी सुन्दरता को सामने लाती है। क्या यह विधवा वह थी जिसका लाभ फरीसियों ने उठाया था और उसका घर उनकी ठगी का शिकार बना था (12:40)? विधवाओं की रक्षा के लिए परमेश्वर के विशेष नियम थे। पुराने नियम में ये चेतावनियां दी गई थीं: ''किसी विधवा या अनाथ बालक को दुःख न देना। यदि तुम ऐसों को किसी प्रकार का दुःख दो और वे मेरी दोहाई दें, तो मैं निश्चय उनकी दोहाई सुनूँगा'' (निर्गमन 22:22, 23)।

दूसरे वचन परोपकार तथा उदारता के विचारों का समर्थन करते हैं। व्यवस्थाविवरण 24:19-21 में इस्राएलियों को जरूरतमंदों द्वारा इकट्ठा किए जाने के लिए अपने अनाज, जैतून और दाख के पूले छोड़ने की आज्ञा दी गई। 26:12, 13 में, लेवियों के लिए उनकी सहायता के अलावा परमेश्वर की प्रजा को ''परदेसी, अनाथ और विधवा को'' दशमांस देने की आज्ञा थी। 27:19 में ऐसे लोगों के साथ न्याय करने से इनकार करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए, श्राप दिया गया है।

यीशु **मन्दिर के भण्डार के सामने बैठकर देख रहा था कि लोग मन्दिर के भण्डार में किस प्रकार पैसे डालते हैं; और बहुत से धनवानों ने बहुत कुछ डाला** (12:41)। शास्त्रियों और फरीसियों के साथ अपनी चर्चा के बाद यीशु एकांत में चला गया होगा, जब वह आराधना में लोगों को देख रहा था।

एक कंगाल विधवा ने आकर दो दमड़ियाँ, जो एक अधेले के बराबर होती हैं, डालीं (12:42)। उसका दान स्त्रियों के आंगन में दिया गया था, जहां तुरही के आकार वाली तेरह पेटियां पड़ी होती थीं।[45] इन्हें ''तुरहियां'' कहा जाता होगा। इनमें दान मन्दिर के विशेष कामों या आवश्यकताओं के लिए डाले जाते थे (जैसे बलिदानों के लिए तेल या दाखरस)। ताम्बे का सिक्का *लैपटन* होता था,[46] जिसका मूल अर्थ ''पतला'' है। यह सब यूनानी सिक्कों में सबसे छोटा था और लगभग बेकार ही होता था। इससे एक रोटी भी नहीं खरीदी जा सकती होगी।

यीशु ने अपने चेलों को बताया, **''मैं तुम से सच कहता हूँ कि मन्दिर के भण्डार में डालने वालों में से इस कंगाल विधवा ने सबसे बढ़कर डाला है''** (12:43)। लगता नहीं है कि उस विधवा ने किसी को दिखाया होगा कि वह क्या डाल रही है, परन्तु यीशु को पता था। अपने आपको पूरी तरह से प्रभु पर छोड़ते हुए, जो कुछ उसके पास था, उसने वह दे दिया।

बहुत से लोग तब तक नहीं देंगे जब तक उन्हें यह न लगे कि दान देने से उन्हें तुरंत वापस

मिल जाएगा। यह महिला उस पर भरोसा नहीं कर सकती। जब तक हम कोई बड़ा दान नहीं दे सकते तब तक न देने को ही पौलुस ने अपनी आमदनी के अनुसार देते रहने की आज्ञा देकर रोक लगाई (1 कुरि. 16:2)।

दूसरे लोग **अपने धन की बढ़ती में से** काफ़ी कुछ दे रहे थे, परन्तु इस स्त्री ने **अपनी घटी में से जो कुछ उसका था अर्थात अपनी सारी जीविका डाल दी** (12:44)। कोई कहता होगा ''कितनी मूर्ख है उसने अपना सब कुछ दे दिया!'' यीशु ने ऐसा नहीं सोचा प्रेरितों 4:34-37 में बरनबास के बड़ा दान दिए जाने का उल्लेख है, परन्तु दूसरे लोगों ने भी, जिनका नाम नहीं दिया, गया बड़ी राशि दी होगी (देखें प्रेरितों 2:44, 45)।

यह विवरण इस बात को दिखाता है कि परमेश्वर लोगों के केवल बाहरी व्यवहार को नहीं बल्कि उनके मनों को देखता है। इस स्त्री के बलिदान ने परमेश्वर के प्रति उसके सम्पूर्ण समर्पण को दिखा दिया। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि इस विधवा को अपने विश्वास और उदारता का बदला तुरंत मिला या नहीं। वह किसी भी भोज पर ऊंचे से ऊंचा स्थान पाने की हक्कदार थी; और इस संसार में चाहे उसे वह स्थान कभी न मिला हो, पर अगले संसार में उसे उसका प्रतिफल अवश्य मिलेगा। उसे उसके प्रेमी उद्धारकर्त्ता की ओर से अनन्तकाल के लिए आशीष दी जाएगी। हो सकता है कि महिमा में उसके आदर को नापा न जा सके। उसने प्रभु को प्रसन्न किया, विशेषकर तब जब फरीसियों का कपट उसे निराश कर रहा था।

प्रासंगिकता

यीशु, ठुकराया हुआ मसीह (12:1-12)

यीशु ने उसे फंसाने और ईमानदारी से उसे उत्तर देने के इनकार करने की कोशिश के लिए प्रधान याजकों, पुरनियों, और शास्त्रियों को डांट लगाई (11:33)। उनके साथ बहस के बाद उसने तीन दृष्टांत दिए। उनसे कहा गया हर दृष्टांत यह समझाने के लिए था कि अगुओं के एक वर्ग के रूप में उन्होंने किस प्रकार से उसे ठुकराया था। ये दृष्टांत दो पुत्रों (मत्ती 21:28-32), दुष्ट किसानों (मत्ती 21:33-41; मरकुस 12:1-12; लूका 20:9-16), और विवाह के भोज (मत्ती 22:1-14) के थे। सुसमाचार के तीनों सहदर्शी विवरणों में दुष्ट किसानों का उल्लेख है, परन्तु दूसरे दो दृष्टांत केवल मत्ती में हैं।

हमारे सामने के इस वचन 12:1-12 में, यीशु ने इन धार्मिक अगुओं को वह सच्चाई बताई, मसीह के साथ उन्होंने क्या किया था।

1. *यह सच्चाई एक दृष्टांत में बताई गई।* इस्राएल के धार्मिक अगुओं ने यीशु के साथ कैसा बर्ताव किया था? यह तथ्य कि उन्होंने मसीह को ठुकरा दिया था, दुष्ट किसानों के विस्तृत विवरण में बताया गया।

यीशु द्वारा बताई गई कहानी में, एक भूस्वामी ने दाख की बारी लगाई और इसके सफलतापूर्वक बढ़ने के लिए सारे संसाधनों का प्रबन्ध किया। उसने इसकी रक्षा के लिए इसके चारों ओर बाड़ लगाई। उसने रस का कुण्ड खोदा ताकि फसल के तैयार होने पर दाख का रस अच्छी तरह से सम्भाला जा सके। उसने दाख की बारी की निगरानी और रक्षा के लिए इसके

निकट एक गुम्मट बनवाया। फिर उसने फसल के लिए और समय आने पर इसके फल की कटाई के लिए मज़दूरों को रखा। यह सारे प्रबन्ध कर लेने के बाद स्वामी अपनी दाख की बारी को ठेकेदारों के सुपुर्द करके चला गया (12:1)।

समय बीतने पर कटाई का मौसम आ गया। मालिक ने किसानों के पास एक सेवक को भेजा ताकि उसे दाख की बारी की फसल का उसका बनता हिस्सा मिल सके (12:2)। ठेकेदारों ने सेवक की पिटाई की और उसे खाली हाथ भेज दिया (12:3)।

मालिक ने एक और सेवक को भेजा और काश्तकारों ने उसे भी भगा दिया। जब वह आया तो उन्होंने उसे पत्थर मारे, उसका सिर फोड़ डाला, उसका अपमान किया और उसे मालिक के पास भेज दिया (12:4)। मालिक ने उनके पास एक और आदमी भेजा और उन्होंने उस पर हमला करके उसे मार डला। और भी सेवकों को भेजा गया, परन्तु उन्होंने उन्हें भी पीटा या मार डाला (12:5)।

अंत में मालिक ने यह मानकर कि वे उसके इकलौते पुत्र के साथ अच्छा बर्ताव करेंगे, अपने पुत्र को भेज दिया; परन्तु उन्होंने उसे मार कर उसकी लाश दाख की बारी के बाहर फेंक दी (12:6, 8)। उन्हें यह लग रहा था कि इस इकलौते वारिस से पीछा छूटने से दाख की बारी उनकी हो जाएगी (12:7)।

मालिक के पास दाख की बारी में आकर, अपना कब्ज़ा लेने और उन दुष्ट लोगों को जिन्होंने इतने भ्रष्ट तरीके से काम किया था, नष्ट करने को छोड़ और कोई उपाय नहीं था। उनके साथ निपट लेने के बाद उसने दाख की बारी का जिम्मा, नये लोगों को दे दिया, जिन्होंने उसके लिए ईमानदारी से काम करना था (12:9)।

2. *यह सच्चाई इस्राएल पर लागू की गई।* महासभा के इन सदस्यों को भी इस बात की समझ थी कि यह दृष्टांत उन्हीं के लिए है। मरकुस ने कहा, ''तब उन्होंने उसे पकड़ना चाहा; क्योंकि समझ गए थे कि उसने उनके विरोध में यह दृष्टान्त कहा है'' (12:12)।

इस दृष्टांत के कई अर्थ निकलते हैं। दृष्टांत वाला स्वामी परमेश्वर को दर्शाता है; और दाख की बारी इस्राएल को कहा गया है, जो कि उस समय उसकी चुनी हुई कौम थी। दाख की बारी लगाने में, इस्राएल जाति के आरम्भ को दिखाया गया है। दाख की बारी के इर्द-गिर्द बाड़ इस्राएल जाति की रक्षा को दर्शाती है। इस्राएल उत्तर की ओर पहाड़ों से, दक्षिणी की ओर जंगल से और पश्चिम की ओर समुद्र से भौगोलिक रूप में सुरक्षित था। और महत्वपूर्ण उस व्यवस्था से जो उनके मनों में होनी आवश्यक थी, आत्मिक रक्षा होती थी। रस के कुण्ड हमें इस्राएल को दिए गए आत्मिक जीवन को बनाए रखने और गुम्मट याजकों और भविष्यद्वक्ताओं की चौकसी भरी सेवा का सुझाव देता है।

दाख की बारी में काम करने वाले किसान प्रधान याजकों, पुरनियों और शास्त्रियों जैसे लोग थे, जो लोगों के धार्मिक अगुवे थे और जिनका कर्त्तव्य इस्राएल की दाख की बारी की रक्षा करना और फसल उसके मालिक के लिए काटना था। फल लेने के लिए उनके पास भेजे गए सेवक परमेश्वर के वे नबी थे, जिनमें से बहुतों के साथ बहुत दुर्व्यवहार हुआ था।

स्वामी जिसने अपने इकलौते पुत्र को भेजा, निश्चित रूप में परमेश्वर स्वयं ही है। पुत्र को अंत में भेजा गया और जो कुछ उन्होंने उसके साथ किया उससे उस जाति का अंत तय हुआ।

मरकुस 12:9 और लूका 20:16 यीशु को दृष्टांत बताने के बाद, अपने ही प्रश्न का उत्तर देते हुए दिखाते हैं, परन्तु मत्ती 21:41 कहता है कि यह घोषणा लोगों की ओर से की किया गया। स्पष्टतया दोनों ही सही हो सकते हैं। 70 ई. में यरूशलेम का विनाश हुआ, परन्तु चालीस साल पहले इसे ठुकरा दिया गया था और इसकी सब सुविधाएं दूसरों को यानी अन्यजातियों को दे दी गई थीं।

3. *इस सच्चाई ने न केवल वह दिखाया जो हो चुका था बल्कि वह दिखाया गया भी जो अभी होने वाला था।* मरकुस 12:10, 11 में यीशु ने कहा, ''क्या तुम ने पवित्र शास्त्रस्त्र में यह वचन नहीं पढ़ा: 'जिस पत्थर को राजमिस्त्रियों ने निकम्मा ठहराया था, वही कोने का सिरा हो गया; यह प्रभु की ओर से हुआ, और हमारी दृष्टि में अद्भुत है'!''

प्रभु भजन 118:22, 23 से उद्धृत कर रहा था और इसने इसे यहूदी धार्मिक अगुओं पर लागू किया। उसने उन्हें बिल्डिंग बनाने वाले कारीगरों के रूप में दिखाया जो बन रही किसी बिल्डिंग नींव में कोने के सिरे के रूप में लगाए जाने के लिए एक विशेष पत्थर को ढूंढ़ने खदान में जाते हुए दिखाया। सबसे बढ़िया पत्थर यानी सिद्ध पत्थर के पास आकर वे किसी कमज़ोर और अयोग्य पत्थर को लेने के लिए इसके पास से निकल गए। उन्हें उस पत्थर की कीमत पता नहीं थी जिसे उन्होंने ठुकरा दिया था।

कारीगरों को पता होना चाहिए था कि कौन सा पत्थर चुनना; परन्तु उन्होंने सबसे बढ़िया पत्थर यानी उस पत्थर को जिसे सबसे बड़े कारीगर परमेश्वर ने ''कोने का सिरा'' बनाया था, ठुकरा दिया। विशेषज्ञों को समझ में नहीं आया और उन्होंने सबसे स्पष्ट और सबसे महत्वपूर्ण पत्थर को नज़रअंदाज़ कर दिया।

इस उदाहरण में यीशु, यानी पुत्र ही वह पत्थर है जिसे ठुकराया गया। धार्मिक अगुवों यानी उन लोगों ने जिन्हें पता होना चाहिए था और जिन्हें लगता था कि उन्हें पता है, मसीहा को ठुकरा दिया। महासभा के सदस्यों और उस समय के अन्य धार्मिक अगुवों ने मसीहा के राज्य को लाना चाहा, परन्तु उन्हें यीशु जो कि वास्तविक मसीहा था, दिखाई न दिया, और उन्हें उस राज्य की जिसे वह स्थापित करने के लिए आया था समझ नहीं आई। उन्होंने उसे और उस राज्य को जिसे वह स्थापित करने के लिए आया था, ठुकराया दिया।

निष्कर्ष: इस्राएल का इतिहास इस दृष्टांत में दिखाई देता है। उन्होंने सिद्ध मसीह को देखा था, उन्होंने विश्वास दिलाने वाले प्रमाण को देखा था, और उन्होंने अपने स्थापित धर्म के पक्ष में यीशु को ठुकरा दिया। मसीह को ठुकराने से बढ़कर जो संसार में आया और उसने हमें बचाने के लिए इतना अधिक दु:ख सहा, कोई और बुरी बात नहीं हो सकती। यह वह बड़ी सच्चाई है जो हमें इस दृष्टांत से सीखनी आवश्यक है।

जहां अविश्वसनीयता होती है, वहां आज नहीं तो कल पाप के द्वारा और पाप के लिए दण्ड मिल ही जाएगा। मसीह को अपने अनुयायियों से फल देने की उम्मीद करने का अधिकार है। यदि हम यीशु को वह लौटाने से इनकार करते हैं जो अधिकारपूर्ण ढंग से उसी का है तो क्या हमें उससे दाख की बारी में जाकर, जो कुछ उसका है उसे फिर से ले लेने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए?

सबसे बड़ी बात जो कोई भी कर सकता है, वह बाइबल के तरीके से मसीह को ग्रहण

करना है। सबसे बुरी बात जो कोई कर सकता है वह मसीह को नकारना है। पहले वाला रास्ता अनन्त जीवन की ओर जाता है और दूसरा रास्ता अनन्त विनाश की ओर।

यीशु अच्छा गुरु (12:13-17)

12:13-17 में हम फरीसियों और हेरोदियों के बीच एकता को देखकर हैरान हो सकते हैं। ये दोनों गुट आम तौर पर एक-दूसरे के विरोधी होते थे, परन्तु इस दृश्य में हम उन्हें दोनों को हित्त वाले काम में एक होते देखते हैं। फरीसी लोग रोम के दमन का विरोध करते थे। और कर देने के विरुद्ध थे। हेरोदेस महान के प्रभाव के कारण हेरोदी लोग कुछ हद तक रोम को कर देने में विश्वास रखते थे। परन्तु यीशु के मामले में ये दोनों शत्रु उसके विरुद्ध संधि करने के लिए इकट्ठे हो गए थे। बाद में पिलातुस और हेरोदेस यीशु की पेशियों के समय मित्र बन गए थे जोकि कुछ ऐसा ही हुआ था। दोनों दल यीशु से पीछा छुड़ाने की कपटी इच्छा से एक हो गए।

प्रतिनिधियों के ये दोनों दल कुटिल इरादे से प्रभावित थे। ''तब उन्होंने उसे बातों में फँसाने के लिये कुछ फरीसियों और हेरोदियों को उसके पास भेजा'' (12:13)। उन्होनें पूछा, ''क्या कैसर को कर देना उचित है या नहीं? हम दें, या न दें?'' (12:14, 15)।

यीशु ने अगुओं के इन दोनों गुटों को ऐसी समझदारी और चतुराई के साथ उत्तर दिया जो उनके या उनके आस-पास के लोगों के देखने और न सुनने में आई थी। उसे इस प्रकार से देखकर हम उन प्रश्नों के लिए जो अलोचक भी पूछते हों, शान और पुरातनता को देख पाते हैं।

1. *यीशु ने सच्चाई के साथ बात की।* ये फरीसी और हरोदी यीशु के पास उन होठों के साथ आए थे जो छल करने के लिए बदनाम थे। उनकी बात का आरम्भ चापलूसी की मोटी परत के साथ हुआ: ''हे गुरु, हम जानते हैं, कि तू सच्चा है, और किसी की परवाह नहीं करता; क्योंकि तू मनुष्यों का मुँह देख कर बातें नहीं करता, परन्तु परमेश्वर का मार्ग सच्चाई से बताता है'' (12:14)। उनके कपटपूर्ण शब्दों से वास्तव में यीशु की वास्तविक तस्वीर पता चल गई। उन्होंने उसे सच्चाई को समर्पित यानी एक ऐसा आदमी दिखाया जो सच्चाई के प्रति अपनी वचनबद्धता में किसी को दखल नहीं देने देता। उन्होंने उसे पक्षपात रहित व्यक्ति बताया। यूनानी में मूल में इसका अर्थ है, ''वह किसी की शकल देखकर पिघलता नहीं।'' उन्होंने इसे वह व्यक्ति बताया जो परमेश्वर का मार्ग सच्चाई से बताता था।

यीशु के इस विवरण से बढ़िया विवरण ढूंढ़ना कठिन होगा। जो कुछ इन अगुवों ने यीशु के लिए कहा वह सही था, परन्तु उन्होंने उसे यह आदर चापलूसी के चोगे में दिया, इससे बढ़कर नहीं। वे झूठ बनाने के लिए सच्चाई का इस्तेमाल कर रहे थे।

ध्यान खींचने वाली इस बात के बाद उन्होंने उसे फंसाने के लिए प्रश्न पूछा। उनका प्रश्न ''हां'' या ''न'' में उत्तर लेने के लिए तैयार किया गया था। स्पष्टतया इन लोगों के प्रश्न में एक कमी थी जिसको यीशु ने अपनी समझदारी में एकदम से पकड़ लिया। उन्हें लगा कि केवल दो ही उत्तर दिए जा सकते हैं और उन्हें पता था कि दोनों उत्तर यीशु को फंसा देगें। यदि वे कहता, ''हां तुम्हें कैसर को कर देना चाहिए, तो फरीसी उसे यहूदियों का गद्दार कहकर बदनाम कर सकते थे।'' यदि वह कहता, ''तुम्हें कैसर को कर नहीं देना चाहिए, तो हेरोदी उस पर बड़े राजद्रोह का आरोप लगा सकते थे।'' ऐसा लगा कि वह बुरी तरह से फंस गया।

जो कुछ ये अगुवे कर रहे थे उसमें हमें कोई आदर के योग्य, सच्ची या अच्छी बात दिखाई नहीं देती। वे यीशु को और दूसरों को धोखा देने के लिए सच्चाई का इस्तेमाल करने का प्रयास कर रहे थे, परन्तु यीशु उनके कपट को समझ गया। एक अर्थ में उसने उनसे कहा, ''मैं जानता हूं कि तुम क्या कर रहे हो। तुम कपटी मुझे इस प्रकार से क्यों परख रहे हो?''

वे चाहे उसे फंसाने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु यीशु ने उन्हें सच्चाई से, ईमानदारी से ओर विश्वासनीय ढंग से उत्तर दिया। कोई उसके मंशा पर सवाल नहीं उठा सकता था।

2. *यीशु ने संतुलन बनाए रखा।* उसका तुरंत उत्तर सिक्का मंगवाने का था: ''एक दीनार मेरे पास लाओ, कि मैं उसे देखूँ'' (12:15)। वह उनसे एक रोमी सिक्का मांग रहा था। उस सिक्के पर इसका उत्तर होना था। यीशु के पास वह सिक्का नहीं था, परन्तु उस टोली में से किसी के पास अवश्य था। यीशु ने उस सिक्के को लेकर उस पर सम्राट की मूर्त और उसके पद की ओर ध्यान दिलाया। दर्शकों के उस मूर्त की ओर देखने पर उसने उनसे पूछा, ''यह छाप और नाम किसका है?'' (12:16)। अचानक फंसाने वाले खुद फंस गए थे। यह सिक्का रोम का था न कि परमेश्वर का, और मनुष्य की आराधना रोम के लिए नहीं थी। उनकी आंखों के सामने जीवन की दो स्थितियों को लाया गया: आत्मिक व्यक्ति और सांसारिक नागरिक।

सिक्के पर अंकित आकृति और सरनावें का इस्तेमाल करते हुए यीशु ने अपने सुनने वालों के सामने दो बातें रखीं। पहली यह थी कि वे सब उस जगह पर रह रहे थे जिसे रोमी सरकार से लाभ मिले हुए थे; और दूसरा यह कि परमेश्वर हर व्यक्ति को जीवित रखता है। हर व्यक्ति की जिम्मेदारी के प्रति है, जिसमें वह रहता, चलता और उसका अस्तित्व है। और हर व्यक्ति की जिम्मेदारी सरकार के प्रति है, जो उसकी रक्षा करती और दूसरे तरीकों से उसके लिए चीज़ें उपलब्ध करवाती है।

3. *यीशु व्यवाहारिक भी था।* अपने इस उदाहरण के साथ दिए उत्तर में वह सरल और निरुत्तर था। संक्षेप में उसने कहा कि हर कोई किसी न किसी रूप में सरकार का देनदार है और राज्य के साथ-साथ हर किसी का कर्त्तव्य परमेश्वर के लिए भी है। यीशु द्वारा दिए गए उत्तर से बढ़कर कोई और उत्तर सार्थक या इससे बढ़कर व्यावहारिक नहीं हो सकता था।

उसका उत्तर आश्चर्यजनक ढंग संक्षेप था। यीशु के थोड़े से शब्द सीधे मुद्दे पर जाकर समस्या की बात करते थे। उसका जवाब विस्तृत था। कर का प्रश्न वर्षों से गर्म था परन्तु यीशु ने मिनटों में इस प्रश्न के दायरे को समेट लिया। उसका उत्तर न्याय का प्रतीक था। जो कैसर का है वह कैसर को देने और जो परमेश्वर का है वह परमेश्वर को देने से बढ़कर बढ़िया बात और क्या हो सकती थी? उसके उत्तर में उसकी समझदारी दिखाई गई। ऐसे प्रश्न को इस तरीके से केवल परमेश्वर का पुत्र ही ले सकता था।

यीशु द्वारा दिए प्रश्न के उत्तर से बहस खत्म हो गई। लूका ने कहा, ''वे लोगों के सामने इस बात में उसे पकड़ न सके, वरन् उसके उत्तर से अचम्भित होकर चुप रह गए'' (लूका 20:26)।

निष्कर्ष: इन आयतों में, यीशु को असीम बुद्धि वाले गुरु के रूप में देखा जा सकता है। इन लोगों को उत्तर देते हुए उसने सच्चाई, संतुलन, और व्यावहारिकता के साथ काम किया। असली समझ में ये गुण होते हैं। ऐसी शिक्षा से आम तौर पर लोग समझ जाते हैं। हम उन लोगों को सुनेंगे जो सच्चाई का प्रचार आत्मिकता से निकलने वाले उस संतुलन से करते हैं। ऐसे प्रचार से

निष्कपट मनों की समझ में आ जाता है।

बाइबल में जब हमें यह बताया जाता है कि परमेश्वरत्व का दूसरा व्यक्ति पृथ्वी पर आया, तो हमारे ध्यान में उसकी क्या तस्वीर आती है? यह जानते हुए कि परमेश्वर धीरजवंत और दया से भरा है, हम मसीहा के सच्चा होने, प्रेम से भरे, निष्कलंक और स्वर्गीय सूझ वाला होने की उम्मीद करेंगे। कोई अहंकारी धार्मिक अगुवा उसे धोखा नहीं दे सकता था। इस दृश्य में क्या हमें भी यही देखने को मिलता है?

जब हम विश्वास, मन फिराव, अंगीकार और पापों की क्षमा के लिए बपतिस्मे में हम यीशु की ओर मुड़ते हैं, तो हम असीम बुद्धि वाले मसीह के साथ चलने लगते हैं। यीशु को प्रभु मानते हुए हम उसकी सेवा करते हैं जो बिल्कुल सच्चा है और हमारे साथ वफ़ादार है। हम अपने अनन्त जीवन को परमेश्वर के पुत्र मसीह पर डाल रहे हैं, इसलिए यह हमारे लिए यह आश्वासन होना आवश्यक है कि वह मार्ग, सत्य और जीवन है।

यीशु की नज़रों से स्वर्ग को देखना (12:18-27)

यीशु के समय सदूकी लोग एक शक्तिशाली धार्मिक समुदाय था। वह पुराने नियम की केवल पहली पांच पुस्तकों यानी पंचग्रंथ को मानते थे। उनका ज़बानी परम्परा से जिसे फरीसी मानते थे, कोई लेन देन नहीं था। जहां तक उनके मन की बात है वे दिखने में अहंकारी, आत्मविश्वासी और स्वार्थी लगते थे। अधिकतर सदूकी महासभा के सदस्य होते थे। मसीह के समय महायाजक काइफा एक सदूकी था और मन्दिर पर उसका और महासभा का नियन्त्रण था। कुछ यहूदी धनवान थे। उनके लिए बड़ी प्रेरणा भौतिकवाद था।

एक वर्ग के रूप में, यह धार्मिक गुट परलोक, स्वर्गदूतों, आत्माओं या परमेश्वर की निजी आवश्यकता के अनुसार सम्भाल पर विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार इस पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन ''होने'' का पूरा अर्थ है। उनका मानना था कि इस ससांर में सबसे योग्य जीवन जीने के लिए अगुआई तोरेत में है।

दबाने वाले रवैये के साथ कुछ सदूकी यीशु को घेरते थे (12:18)। उसके साथ अपनी बहस में वे फरीसियों और हेरोदियों का साथ देते थे, जिन्होंने अभी-अभी रोम को कर देने की चर्चा में यीशु के साथ बहस में लगे हुए थे और उन्हें बड़ी बुरी हार मिली थी। सदूकियों को यकीन था कि उस प्रश्न के साथ जो उन्होंने उसके लिए तैयार किया था, वे यीशु को गलत साबित कर सकते हैं और जी उठने में उसके विश्वास का मज़ाक उड़ा सकते हैं।

यीशु के पास वे शायद मुर्दों में से जी उठने के विरुद्ध अपना सबसे पसंदीदा तर्क लेकर आए थे। उन्होंने यीशु के सामने एक काल्पनिक विवाह की बात रखी, जिसमें सात पतियों की एक पत्नी थी। हर पति अपने भाई का नाम आगे चलाने के लिए बिना वारिस के मर गया। व्यवस्था के अनुसार करेवा अर्थात जीवित रहने वाले भाई को मरे हुए आदमी की पत्नी से विवाह करना होता था जिसके कोई बेटा न हो (12:19)। उस विवाह से जन्मा पहले बेटे से परिवार का नाम आगे चलना होता था और उसी को परिवार की सम्पत्ति मिलती थी। सदूकियों ने एक के बाद एक ऐसी घटनाएं घड़ लीं जिनमें एक एक करके छह के छह भाइयों ने उसी स्त्री से विवाह किया, और सारे के सारे उस स्त्री से संतान उत्पन्न किए बिना मर गए (12:20-22)। उनकी कहानी

उस विधवा के उन सातों भाइयों के साथ विवाह करने के बाद मर जाने पर खत्म हुई (12:22)।

सदूकियों ने, यह सोचकर कि उन्होंने यीशु को फंसा लिया है, उससे पूछा होगा, ''पुनरुत्थान के समय वह किसकी पत्नी होगी? ऐसे मामले में परमेश्वर क्या करेगा?'' (देखें 12:23)। उनके प्रश्न में यह कल्पना की गई थी कि अनन्तकाल में जीवन पृथ्वी के जीवन के जैसा ही होगा। इस प्रश्न पर सदूकियों के साथ बहस में फरीसी हार जाते होंगे, क्योंकि वे विवाह को शामिल करके स्वर्ग में इस संसार जैसे जीवन की उम्मीद करते थे।

यीशु ने उन्हें पवित्र शास्त्र में बताई गई अनन्त जीवन की सच्चाई की जो ध्यान दिलाते हुए, उनके प्रश्न का उत्तर दिया। उसने कहा, ''क्या तुम इस कारण से भूल में नहीं पड़े हो कि तुम न तो पवित्रशास्त्र ही को जानते हो, और न ही परमेश्वर की सामर्थ्य को?'' (12:24)। फिर यीशु ने उस अनन्त जीवन की विशेषताएं गिनवाईं जो परमेश्वर के छुड़ाए हुओं को मिलेगा।

1. यीशु ने इन सदूकियों को बताया कि *अनन्त जीवन आत्मिक जहाज़ पर रहना होगा*। स्वर्ग में विवाह की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। उसने कहा, ''क्योंकि जब वे मरे हुओं में से जी उठेंगे, तो वे न विवाह करेंगे और न विवाह में दिए जाएँगे, परन्तु स्वर्ग में दूतों के समान होंगे'' (12:25)। उसके कहने का अर्थ था कि स्वर्गीय जीवन इस संसार के जीवन से बहुत अलग होगा। छुड़ाए हुओं का एक-दूसरे के साथ आत्मिक सम्बन्ध होगा, जो इस जीवन में पति-पत्नी के विवाह वाले सम्बन्ध से कहीं बढ़कर होगा। वह समय जिसे हम जानते हैं नहीं होगा, और मृत्यु भी नहीं होगी। यीशु ने कहा कि उसके प्रश्न पूछने वालों को पता होना चाहिए कि स्वर्ग के जीवन के विषय में परमेश्वर का वचन है।

सदूकियों को यह समझ में नहीं आया था कि प्रभु के सेवकों के लिए स्वर्गीय घर है और वहां का जीवन इस जीवन से जिसे हम जानते हैं, कहीं बढ़कर आत्मिक है। पौलुस ने बाद में कुरिन्थुस के लोगों को लिखा, ''[शरीरिक] देह बोई जाती है, और आत्मिक देह जी उठती है: जब कि स्वाभाविक देह है, तो आत्मिक देह भी है'' (1 कुरिन्थियों 15:44)। हम नहीं जानते कि परमेश्वर की उपस्थिति में जीवन कैसा होगा, परन्तु यह एक आत्मिक जहाज़ पर होगा और उससे कहीं बढ़कर होगा, जो इस जीवन में हम जानते हैं।

2. यीशु ने यह भी कहा कि *स्वर्ग के जीवन का अस्तित्व अनन्तकालिक होगा, न कि सांसारिक*। उसने धार्मिक अगुओं को बताया कि यह समझने के लिए कि अनन्त जीवन कैसा होगा, उन्हें परमेश्वर की सामर्थ का पता होना आवश्यक है। परमेश्वर में स्वर्ग के लिए हमें नई देहें देने की सामर्थ है। वह हमें आत्मिक देहों में आत्मिक जीवन दे सकता है, और वह जीवन उस जीवन से जिसे हम यहां जानते हैं, बहुत बढ़िया होगा। स्वर्ग में न मृत्यु, न बीमारी और न बिगाड़ होगा।

हमें अनन्त जीवन मिलेगा और इस प्रकार से हम स्वर्गदूतों के जैसे होंगे। यह कहते हुए यीशु ने निर्गमन 3:6 से उद्धृत किया:

> मरे हुओं के जी उठने के विषय में क्या तुम ने मूसा की पुस्तक में झाड़ी की कथा में नहीं पढ़ा कि परमेश्वर ने उससे कहा, 'मैं अब्राहम का परमेश्वर, और इसहाक का परमेश्वर, और याकूब का परमेश्वर हूँ'? (मरकुस 12:26)।

सनातन परमेश्वर, सदा से है और सदा तक रहेगा। अपनी सृष्टि में उसने मनुष्य को अपने अनन्त स्वरूप में बनाया। इसलिए मनुष्य की आत्मा कभी नहीं मरेगी। परमेश्वर की तरह, यह भी अनन्त है। देह यानी वह घर जिसमें मनुष्य रहता है, का मरना आवश्यक है, क्योंकि इसे मिट्टी से बनाया गया है; परन्तु वास्तविक मनुष्य यानी आत्मा या प्राण की मृत्यु कभी नहीं हो सकती। स्वर्ग में रहने वालों को एक अलग प्रकार की देह मिलेगी, ''क्योंकि मांस और लहू परमेश्वर के राज्य के अधिकारी नहीं हो सकते'' (1 कुरि. 15:50)। 2 कुरिन्थियों 5:1 में हम पढ़ते है, ''क्योंकि हम जानते हैं, कि जब हमारा पृथ्वी पर का डेरा सरीखा घर गिराया जाएगा तो हमें परमेश्वर की ओर से स्वर्ग पर हम ऐसा भवन मिलेगा, जो हाथों से बना हुआ घर नहीं, परन्तु चिरस्थाई है।''

3. यीशु ने कहा कि *स्वर्गीय जीवन का उद्देश्य बड़ा होगा*। उसने अपने प्रश्न पूछने वालों को बताया कि अनन्तकाल में जीवन कैसा होगा उसे समझने के लिए उन्हें परमेश्वर के स्वभाव को जानना आवश्यक था। उसने यह दावा किया: ''परमेश्वर मरे हुओं का नहीं वरन् जीवतों का परमेश्वर है'' (12:27)। परमेश्वर जीवित परमेश्वर है और उससे जुड़ी कोई भी चीज़ जीवित है। अब्राहम, याकूब और इसहाक उसके साथ मरे हुओं के रूप में नहीं बल्कि उन अलग हुई आत्माओं के रूप में जो अनन्तकाल में उसके साथ रह रही हैं, परमेश्वर के साथ हैं।

जब हम इस पर विचार करते हैं तो हम परमेश्वर के स्वभाव को अपने अंदर में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, यह स्पष्ट है कि हम में से हर किसी के दूसरों के साथ संगति करना अच्छा लगता है। अपने परिवारों और अपने मित्रों के साथ मिलने वाली संगति के बिना हम क्या होते? उसी प्रकार से परमेश्वर को अपनी सृष्टि के साथ संगति करना अच्छा लगता है। उसकी अब हमारे साथ संगति है और जब हम अन्तकाल में चले जाएंगे तब अपने स्वर्गीय परिवार के साथ उसकी इससे भी बड़ी संगति होगी। जैसा कि परमेश्वर की संतान के लिए अनन्तकाल को दिखाते हुए यूहन्ना ने कहा, ''फिर स्राप न होगा, और परमेश्वर और मेम्ने का सिंहासन उस नगर में होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे। वे उसका मुंह देखेंगे, और उसका नाम उसके माथों पर लिखा हुआ होगा'' (प्रका. 22:3, 4)।

सदूकियों की समझ में अनन्तकाल के आत्मिक होने की बात नहीं आई थी और न वे इस पर विश्वास करते थे। अपनी बात को पक्का करने के लिए जो हवाला उन्होंने दिया था वह परमेश्वर के अनन्त, जीवित होने को बताता था। यीशु ने उन्हें पीछे जाकर पवित्र शास्त्र का फिर से अध्ययन करने को कहा।

निष्कर्ष: इस बातचीत में यीशु ने सदूकियों को दो बार बताया कि वह पवित्र शास्त्र का अध्ययन न करके गलत थे; उसने अपने उत्तर के आरम्भ में भी कहा और अंत में भी (मरकुस 12:24, 27)। उसने कहा कि वह पवित्र शास्त्र पर बहस तो कर रहे हैं, परन्तु उसे समझते नहीं। इसके अलावा उसने कहा कि वे पवित्र शास्त्र को नहीं जानते थे, इसलिए उन्हें परमेश्वर की सामर्थ की समझ नहीं थी (12:24)।

बाइबल उन सबसे बड़े दानों में से एक है जो पवित्र आत्मा ने हमें दिया है। पतरस ने इन शब्दों के साथ इस तथ्य की पुष्टि की कि ''... उसकी ईश्वरीय सामर्थ ने सब कुछ जो जीवन भक्ति से सम्बन्ध रखता है, हमें उसी की पहचान के द्वारा दिया है, जिसने हमें अपनी ही महिमा और सद्गुण के अनुसार बुलाया है'' (2 पतरस 1:3)। उसकी घोषणा कि ''सब कुछ जो जीवन

और भक्ति से सम्बन्ध रखता है'' व्यापक है। यदि हम यह कहें कि ''उसकी ईश्वरीय सामर्थ ने हमें वह सब कुछ दे दिया है जो हमें अनन्त जीवन और स्वर्ग के बारे में जानना आवश्यक है'' तो हम बिना कोई गलती किए इस वाक्यांश को मान सकते हैं।

याद रखें कि यीशु के पीछे चलने के लिए परमेश्वर के वचन को मानना आवश्यक है। वचन हमें मसीह का जीवन जीने, परमेश्वर के बारे में सही सोच रखने और उस अनन्त आशा को बढ़ाने में अगुआई देता है जो मसीही लोगों को होनी चाहिए। स्वर्ग को वैसे देखने लिए जैसे यीशु उसे देखता था, केवल परमेश्वर का वचन ही हमें रास्ता दिखा सकता है।

''सबसे बड़ी आज्ञा'' (12:28-34)

यीशु के सदूकियों के साथ अपनी सार्वजनिक बहस खत्म करने के बाद, एक शास्त्री उसके पास एक सवाल लेकर आया। यह आदमी एक फरीसी यानी व्यवस्थापक था जो वाद-विवाद करने में निपुण था और पुराने नियम के पवित्र शास्त्र का जानकार था। जब उसने यीशु के लिए सुना कि उसने फरीसियों, हेरोदियों और सदूकियों को कैसे उत्तर दिया है, तो वह यीशु के उत्तरों की सादगी, गहराई और सत्यता से प्रभावित हुआ। उसने सोचा होगा कि उसके द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने से वह यीशु से उस विवाद को सुलझवा सकता है, जो लम्बे अरसे से फरीसियों में बहस का विषय बना हुआ था।

रब्बियों ने तोरह में 613 आज्ञाओं को गिना था।[47] उन्होंने इन आज्ञाओं को सकारात्मक आज्ञाएं और नकारात्मक आज्ञाएं कहकर दो श्रेणियों में बांटा था। बड़ी बहस इस पर होती थी कि इनमें से सबसे बड़ी आज्ञा क्या है या सबसे आवश्यक कौन सी है। एक वर्ग के रूप में, फरीसी छोटी से छोटी आज्ञाओं को भी मानने पर बड़ा ज़ोर देते थे, और ऐसा करते हुए वे न्याय, दया, और सच्चाई जैसे व्यवस्था के बड़े मामलों को नज़रअंदाज़ कर देते थे। यीशु ने बाद में उन्हें डांटना था (देखें मत्ती 23:23)।

कुछ यहूदी इस ज़ोर दिए जाने से असंतुष्ट थे और वे सचमुच में जानने के इच्छुक थे कि परमेश्वर की सेवा करने के लिए क्या आवश्यक है। यह शास्त्री उन्हीं में से कोई होगा। शायद उसने आरम्भ यीशु का विरोध करते हुए किया, परन्तु प्रभु से उन प्रश्नों के उत्तर सुनकर, जिन्हें वह लेकर आया था, उसका रवैया बदल गया। यह प्रश्न पिछले प्रश्नों के जैसा चालाकी भरा नहीं लगता है। इस आदमी ने यीशु से पूछा, ''सबसे मुख्य आज्ञा कौन सी है?'' (12:28)।

उसके प्रश्न साफ़-साफ़, और उपयुक्त प्रश्न के सम्बन्ध में, यीशु ने व्यवस्थाविवरण 6:4, 5 से उद्धृत करते हुए सीधे उत्तर के साथ जवाब दिया:

> सब आज्ञाओं में से यह मुख्य है: ''हे इस्राएल सुन! प्रभु हमारा परमेश्वर एक ही प्रभु है, और तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे मन से, और अपने सारे प्राण से, और अपनी सारी बुद्धि से, और अपनी सारी शक्ति से प्रेम रखना।'' और दूसरी यह है, ''तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना'' (मरकुस 12:29-31)।

यह वचन परमेश्वर की प्रभुता, एकता और अपने लोगों के साथ वाचा के सम्बन्ध का संकेत देता है। पवित्र शास्त्र के अनुसार हम सभी प्रेम के कारण परमेश्वर और अपने साथ के मनुष्य के

प्रति देनदार हैं। परमेश्वर से प्रेम करने की आज्ञा अपने अंदर बेहतरीन करने की मांग करने को कहती है। व्यवस्थाविवरण जहां हमारे जीवन को तीन भागों में बांटता है, वहीं मरकुस में चार भागों का उल्लेख हैं। यीशु ने कहा, ''तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे *मन* से, और अपने सारे *प्राण* से, और अपनी सारी *बुद्धि* से, और अपनी सारी *शक्ति* से प्रेम रखना'' (12:30)। इन शब्दों के बीच एक-दूसरे के साथ काफ़ी समानता होने के कारण, यह कहना अच्छा है कि हम परमेश्वर से अपने हर अंग से यानी जो कुछ हमारे अंदर है, प्रेम करें।

यीशु ने इस आज्ञा को ''सबसे बड़ी'' यानी सर्वोच्च आज्ञा बताया। यह आज्ञा सब आज्ञाओं में सबसे बड़ी क्यों है?

1. *इस की पूर्णता के कारण।* परमेश्वर के वास्तविक प्रेम की विशेषता सम्पूर्णता है। इस आज्ञा में दूसरी हर आज्ञा समा जाती है। यीशु ने कहा, ''यदि तुम मुझ से प्रेम रखते हो, तो मेरी आज्ञाओं को मानोगे'' (यूहन्ना 14:15)। क्या हम भी यह नहीं कह सकते, ''यदि तुम परमेश्वर से प्रेम रखते हो, तो तुम उसकी आज्ञाओं को मानोगे''? प्रेम एक छतरी के जैसा है, जिसमें परमेश्वर की दूसरी सब आज्ञाएं आ जा जाती हैं। 12:30, 31 में ''तू प्रभु अपने परमेश्वर से ... प्रेम रखना ... तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना'' दस आज्ञाओं का सार है। पहली चार आज्ञाएं परमेश्वर के प्रति हमारे कर्त्तव्य से सम्बन्धित हैं, जबकि अंतिम छह आज्ञाएं दूसरों के प्रति हमारे कर्त्तव्यों से सम्बन्धित हैं।

प्रेम सबसे बड़ी प्रेरणा है। सचमुच में प्रेम करने वाला व्यक्ति उसे करना चाहिए। जो कुछ सही और भला हो उसे करने के लिए समर्पित हुए बिना, हम परमेश्वर से प्रेम नहीं रख सकते।

2. *इसकी पवित्रता के कारण।* सच्चा प्रेम परमेश्वर की ओर से मिलता है। जब परमेश्वर हमें प्रेम देता है तो वह हमें अपना कुछ भाग दे रहा होता है।

पौलुस ने कहा, ''क्योंकि सारी व्यवस्था इस ... में पूरी हो जाती है, 'तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख''' (गला. 5:14)। दूसरों के लिए वास्तविक प्रेम परमेश्वर के प्रेम से ही निकलता है। यूहन्ना ने प्रेम के व्यावहारिक प्रभावों का वर्णन किया:

> हे प्रियो, हम आपस में प्रेम रखें; क्योंकि प्रेम परमेश्वर से है: और जो कोई प्रेम करता है, वह परमेश्वर से जन्मा है; और परमेश्वर को जानता है। जो प्रेम नहीं रखता, वह परमेश्वर को नहीं जानता, क्योंकि परमेश्वर प्रेम है (1 यूहन्ना 4:7, 8)।
>
> हे प्रियो, जब परमेश्वर ने हमसे ऐसा प्रेम किया, तो हम को भी आपस में प्रेम रखना चाहिए (1 यूहन्ना 4:11)।
>
> हम इसलिए प्रेम करते हैं, कि पहिले उसने हमसे प्रेम किया। यदि कोई कहे, ''मैं परमेश्वर से प्रेम रखता ह'' और अपने भाई से बैर रखे; तो झूठा है; क्योंकि जो अपने भाई से, जिसे उसने देखा है, प्रेम नहीं रखता, तो वह परमेश्वर से भी जिसे उसने नहीं देखा, प्रेम नहीं रख सकता। उससे हमें यह आज्ञा मिली है, कि जो कोई परमेश्वर से प्रेम रखता है, वह अपने भाई से भी प्रेम रखे (1 यूहन्ना 4:19-21)।

3. *इसके उपयोगी होने के कारण।* प्रेम में दूसरे सब गुणों से बढ़कर उपजाऊपन है।

परमेश्वर का प्रेम हमारे अंदर अपने भाइयों और बहनों के लिए प्रेम उत्पन्न करता है। यूहन्ना ने इस सच्चाई की पुष्टि की: ''जब हम परमेश्वर से प्रेम रखते हैं, और उसकी आज्ञाओं को मानते हैं, तो इसी से हम जानते हैं, कि परमेश्वर की सन्तानों से प्रेम रखते हैं'' (1 यूहन्ना 5:2)।

इसके अलावा परमेश्वर का प्रेम हमें उसके वचन को मानने के लिए प्रेरित करता है। प्रेम उसके नियमों को मानने के लिए प्रेरित करता है। बिना प्रेम के हमारे आज्ञा मानने का कोई नैतिक मूल्य नहीं होना था। यूहन्ना ने लिखा, ''क्योंकि परमेश्वर का प्रेम यह है, कि हम उसकी आज्ञाओं को मानें; और उसकी आज्ञाएं कठिन नहीं'' (1 यूहन्ना 5:3)।

इसके अलावा प्रेम शुद्धता लाता है। हर पाप प्रेम की व्यवस्था का उल्लंघन है और हर अनुग्रह या सद्गुण प्रेम की अभिव्यक्ति है। परमेश्वर का पाप के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है (याकूब 1:13; 1 यूहन्ना 1:5; 4:16)।

निष्कर्ष: प्रेम सबसे बड़ी आज्ञा क्यों है? इसकी परिपूर्णता, इसकी पवित्रता और इसके उपयोगी होने के कारण। ''पर अब विश्वास, आशा, प्रेम ये तीनों स्थाई हैं, पर इन में सब से बड़ा प्रेम है'' (1 कुरि. 13:13)। परमेश्वर प्रेम है और हमारे लिए उसके जैसे बनने का एकमात्र ढंग अपने हृदयों को उसके प्रेम से भर देना है।

मरकुस 12 वाले व्यवस्थापक को समझ में आ गया और उसने सच्चाई को साफ़-साफ़ मानते हुए कह दिया। उसने यीशु से कहा,

> ''हे गुरु, बहुत ठीक! तू ने सच कहा कि वह एक ही है, और उसे छोड़ और कोई नहीं। और उससे सारे मन, और सारी बुद्धि, और सारे प्राण, और सारी शक्ति के साथ प्रेम रखना; और पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना, सारे होमबलियों और बलिदानों से बढ़कर है'' (12:32, 33)।

इस आदमी के समझदारी से उत्तर दिए जाने को मानते हुए यीशु ने उससे कहा, ''तू परमेश्वर के राज्य से दूर नहीं'' (12:34)। न केवल यह व्यवस्थापक प्रभावित हुआ बल्कि जिन लोगों ने इस बातचीत को सुना था वे भी प्रभावित हुए, मरकुस ने कहा, ''और किसी को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ'' (12:34)।

''पड़ोसियों वाला प्रेम'' (12:29-31)

एक शास्त्री ने, जो कि फरीसीनुमा व्यवस्थापक था, यीशु ने से पूछा कि मूसा की व्यवस्था में सबसे बड़ी आज्ञा कौन सी है (12:28)। उत्तर देते हुए यीशु ने उसके साथ बड़े प्रेम से बात की। उसने कहा, कि पहली तो परमेश्वर से प्रेम करना है जबकि दूसरी आज्ञा दूसरों से प्रेम करना है (12:30, 31)।

हम इन दोनों में से यानी अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम रखने की आज्ञा पर ध्यान दें। याकूब 2:8 में इसे ''राज व्यवस्था'' कहा गया और रोमियों 13:8 में इसे व्यवस्था को पूरा करना बताया गया है। गलातियों 5:14 में पौलुस ने कहा, ''क्योंकि सारी व्यवस्था इस एक ही बात में पूरी हो जाती है, 'तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख।''' यीश, ने धनवान जवान हाकिम से आज्ञाएं मानने को कहते हुए विशेषकर ''अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना'' की आज्ञा

का उल्लेख किया (मत्ती 19:19)।

इन महत्वपूर्ण आज्ञाओं के बारे में बड़ा प्रश्न यह है कि ''हम अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम कैसे रखें?'' इस प्रकार के प्रेम की विशेष बातों की समीक्षा करते हैं।

1. *पड़ोसियों वाला प्रेम व्यावहारिक प्रेम है।* अपने आप से प्रेम करने का अनुभव हम सबको है। हम अपनी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि अच्छा जीवन जीने के लिए हमारी आवश्यकताएं पूरी हों।

कथित ''सुनहरी नियम'' प्रसन्नता से रहने के लिए दूसरों की सहायता करने की सबसे व्यावहारिक मुख्य बात है: ''इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो; क्योंकि व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं की शिक्षा यही है'' (मत्ती 7:12)। इस नियम का पता इसकी विशालता – ''जो कुछ''; और कार्य-प्रणाली – ''जो तुम चाहते हो मनुष्य तुम्हारे साथ, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो''; आत्मिकता से – ''व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं की शिक्षा यही है।'' पड़ोसी के लिए जो कुछ हम चाहते हैं कि वह हमारे लिए करे, वैसा ही प्रेम रखने से बेहतर तरीका और क्या हो सकता है?

2. *पड़ोसियों वाला प्रेम सक्रिय प्रेम है।* यह आज्ञा तुरन्त जवाब के लिए कहती है। यह पड़ोसी के प्रति हमारी भावना नहीं (भावनाएं अलग हो सकती हैं), परन्तु जो कुछ हम पड़ोसी के लिए करते है। जब हम किसी पड़ोसी को परेशानी में देखते हैं तो क्या हम उसकी सहायता करते हैं?

हमारे प्रभु ने धन्य सामरी की अपनी कहानी के साथ इस सच्चाई को समझाया (लूका 10:30-37)। यीशु की कहानी वाले याजक और लेवी के उलट जो किसी ज़रूरतमंद को देखकर ''कतराकर चले गए'' इस सामरी ने सक्रिय प्रेम दिखाया:

> परन्तु एक सामरी यात्री वहां आ निकला, और उसे देखकर तरस खाया। उसने उसके पास आकर उसके घावों पर तेल और दाखरस डालकर पट्टियां बान्धी, और अपनी सवारी पर चढ़ाकर सराय में ले गया, और उसकी सेवा टहल की (लूका 10:33, 34)।

कहानी के अंत में, यीशु ने पूछा, ''अब मेरी समझ में जो डाकुओं में घिर गया था, इन तीनों में से उसका पड़ोसी कौन ठहरा?'' (लूका 10:36)। व्यवस्थापक ने जवाब दिया, ''वही जिसने उस पर दया की'' (लूका 10:37)। यीशु के अंतिम शब्दों में एक संदेश था जो हम सबको सुनना आवश्यक है: ''जा, तू भी ऐसा ही कर'' (लूका 10:37)। हम किसी ज़रूरतमंद को देखकर उसकी सहायता का छोड़ कतराकर न निकल जाएं। मित्रतापूर्वक प्रेम सहानुभूति से बढ़कर प्रेम दिखाना है।

3. *पड़ोसियों वाला प्रेम बना रहने वाला प्रेम है।* यह कभी कभार दिखाई देने वाला प्रेम नहीं है, बल्कि यह प्रतिदिन का प्रेम है। नये नियम के हर वचन में, जिसमें इस विषय पर बात की गई है, निरन्तरता को दिखाया गया है। रोमियों 13:8-10 कहता है,

> आपस के प्रेम को छोड़ और किसी बात में किसी के कर्जदार न हो; क्योंकि जो दूसरे से प्रेम रखता है, उसी ने व्यवस्था पूरी की है। क्योंकि यह कि ''व्यभिचार न करना, हत्या न करना, चारी न करना, लालच न करना,'' और इन को छोड़ और कोई भी आज्ञा हो तो

सब का सारांश इस बात में पाया जाता है, ''अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख।''
प्रेम पड़ोसी की कुछ बुराई नहीं करता, इसलिये प्रेम रखना व्यवस्था को पूरा करना है।

हम कह सकते हैं कि दूसरों से प्रेम करने की आज्ञा पहली और सबसे बड़ी आज्ञा का परिणाम है। यदि हम अपने पूरे मन से परमेश्वर से प्रेम रखते हैं तो हम अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम रखेंगे। अपने पड़ोसियों से हमारा प्रेम परमेश्वर के लिए हमारे प्रेम के कारण होता है।

निष्कर्ष: पड़ोसियों वाला प्रेम क्या है? तीन बातें स्पष्ट हैं। यह व्यावहारिक है: हम अपने पड़ोसी को वह देने की कोशिश करते हैं जिसकी उसे सचमुच में आवश्यकता है। यह सक्रिय है: हम अपने पड़ोसियों के साथ अपने समान प्रेम तब तक नहीं रख रहे होते जब तक हम सचमुच में उनकी सहायता नहीं करते। यह बना रहता है: पड़ोसी से प्रेम करना प्रतिदिन से लेकर प्रति वर्ष तक होता है। यह केवल किसी विपत्ति के आने पर ही नहीं दिखेगा। बल्कि यह यीशु के साथ हमारे प्रतिदिन चलने का भाग है।

हम यीशु की सेवा कैसे करते हैं? हम अपने जीवन, मनों के केन्द्रबिन्दु के साथ यह सुनिश्चित करते हुए आरम्भ करते हैं कि हम प्रभु के साथ सही हैं; और फिर हम अपने परिवार, अपने स्थानीय समाज, अपने राष्ट्रीय समाज और अपने आस पास के संसार की जातियों में जाते हैं। सुसमाचार का सुनाया जाना यरूशलेम से आरम्भ हुआ और वहां से संसार के कोने-कोने में पहुंचने के लिए निकला। यह मूवमेंट परमेश्वर के लिए हमारे प्रेम के जैसी है। दया करना हमारी करुणा को दिखाता है परन्तु बड़ी करुणा हमारा ग्रेट कमीशन नहीं है। पूरी संसार में जाने पर हमारा उद्देश्य दूसरों को सुसमाचार बताना है। हम उन लोगों के साथ जिनसे हम मिलते हैं करुणामय हृदय को दिखाना चाहते हैं। हमें हर उस व्यक्ति से जिससे हम मिलते हैं उसका भला चाहना और उससे प्रेम रखना चाहिए। जो कुछ हम उनके लिए करते हैं उसके लिए हमें उसमें व्यावहारिक होना चाहिए, हमें उनकी सहायता करने के लिए अपने हाथों को खोल देना चाहिए और मसीह का संदेश बांटते हुए हर समय उनकी सेवा के लिए तैयार रहना चाहिए।

एक अच्छे मित्र को आम तौर पर अच्छे मित्र मिल ही जाते हैं और अच्छे पड़ोसी को आम तौर पर अच्छे पड़ोसी भी मिल जाएंगे। परन्तु मसीही होने के नाते हमें अच्छे पड़ोसी मिलें या न, पड़ोसियों वाला प्रेम को दिखाना आवश्यक है। हमारे प्रतिदिन के जीवन को परमेश्वर का प्रेम इसी प्रकार से प्रभावित करता है।

यीशु कौन है? (12:35-37)

धार्मिक अगुओं के साथ यीशु की बहसों के अंत के निकट, यीशु ने पृथ्वी की अपनी सारी सेवकाई के सबसे स्पष्ट दावों में से एक दिया कि वह कौन था और कौन है। इस चर्चा में भजन 110 में से दिया गया उसका उद्धरण हमारा ध्यान खींचता है। यह दिखाते हुए कि वह दाऊद का प्रभु था, उसने भजन के आरम्भिक भाग में से उद्धृत किया। एक अर्थ में उसने फिर अपने सुनने वालों से पूछा, ''यदि मैं परमेश्वर का पुत्र नहीं हूं, तो फिर यह कैसे हो सकता है?'' मत्ती 22:46 कहता है, ''इसके उत्तर में कोई भी एक बात न कह सका। उस दिन से किसी को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ।'' यीशु ने इस भजन को जिसे उसके सुनने वाले मानते और विश्वास करते थे, अपनी बहस का केन्द्रबिन्दु बनाकर अपने आलोचकों के मुंह बंद कर दिए और उनके

मनों में अपने ईश्वरीय दावों की बात सच साबित करके उन्हें भेज दिया।

मसीहा के इस भजन का इस्तेमाल करते हुए और हमारे प्रभु द्वारा इससे आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए हम पूछते हैं, ''यीशु कौन है ?''

1. *यीशु दाऊद का प्रभु है।* वह प्रतिज्ञा किया हुआ मसीहा है। यीशु ने भजन 110 की व्याख्या, यह कहते हुए की:

> ''दाऊद ने आप ही पवित्र आत्मा में होकर कहा है: 'प्रभु ने मेरे प्रभु से कहा, ''मेरे दाहिने बैठ, जब तक कि मैं तेरे बैरियों को तेरे पाँवों की पीढ़ी न कर दूँ।''' दाऊद तो आप ही उसे प्रभु कहता है, फिर वह उसका पुत्र कहाँ से ठहरा ?'' (मरकुस 12:36, 37)।

दाऊद अपने किसी होने वाले वंशज की बात नहीं कर रहा हो सकता था जिसने इतना ज़बर्दस्त राजा होना था कि वह दाऊद का प्रभु बन जाए। ऐसा तर्क यीशु के दावे के साथ मेल नहीं खाता। यीशु दावा कर रहा था कि वह दाऊद की संतान से बड़ा है; वह दावा कर रहा था कि वह दाऊद का प्रभु है और पवित्र आत्मा के द्वारा इस तथ्य को दाऊद से मनवाया गया था।

2. *यीशु परमेश्वर का पुत्र है;* नहीं तो वह दाऊद का प्रभु नहीं हो सकता था। उसके द्वारा उद्धृत भजन में कहा गया था कि प्रभु, याहवेह ने उससे कहा, ''''मेरे दाहिने बैठ, जब तक कि मैं तेरे बैरियों को तेरे पाँवों की पीढ़ी न कर दूँ'''' (12:36; देखें भजन 110:1)। अनादि परमेश्वर ने, जो कि हम सब का पिता है, यीशु से आकर उसके दाहिने हाथ बैठने को कहा, जो कि आदर और शक्ति का स्थान है। उसने उसे इस जगह पर तब तक बैठने को कहा जब तक उसके सारे वैरी उसके पांव की चौकी नहीं बन जाते। पांव की चौकी का प्रतीक हमेशा विजय का रहा है। जब कोई चौकी पर अपने पांव रखता है तो निश्चय ही उसका उस चौकी पर पूरा नियन्त्रण होता है। मसीह के साथ यही होना था। यानी उसने तब तक राज करना था जब तक सम्पूर्ण विजय न मिल जाती। पिता ने उसे उसके पास प्रभु के रूप में तब तक बैठने के लिए बुलाया जब तक उसके सब शत्रुओं का नाश नहीं हो जाता। 1 कुरिन्थियों 15:27, 28 में पौलुस ने इसे इस प्रकार कहा:

> क्योंकि ''परमेश्वर ने सब कुछ उसके पांवों तले कर दिया है,'' परन्तु जब वह कहता है कि सब कुछ उसके आधीन कर दिया गया है तो प्रत्यक्ष है, कि जिस ने सब कुछ उसके आधीन कर दिया, वह आप अलग रहा। और जब सब कुछ उसके आधीन होजाएगा, तो पुत्र आप भी अपने आधीन हो जाएगा जिस ने सब कुछ अपने आधीन कर दिया; ताकि सब में परमेश्वर ही सब कुछ हो।

3. *यीशु स्वर्ग की ओर से भेजा गया परमेश्वर/मनुष्य है।* अपने तर्क में यीशु अपनी मानवीय वंशावली से ऊपर उठ गया। उसने यह इनकार नहीं किया कि वह दाऊद का शारीरिक पुत्र है, परन्तु वह उसकी वंशावली से ऊपर चला गया। उसने कहा कि इस पृथ्वी पर रहने के लिए आने से पहले वह दाऊद का प्रभु था। उसके सुनने वालों ने मान लिया था कि वह दाऊद का पुत्र है। उसकी वंशावली इस बात की मांग करती थी कि वे इस सच्चाई को मान लें। उन्होंने यह भी मान लिया कि मसीहा ने जब भी आना था दाऊद के वंश में से ही आना था। उनके साथ

अपनी चर्चा में यीशु ने दावा किया कि वह दाऊद की संतान होने से ऊपर है यानी वह उसका प्रभु है। जब उसने यह कहा तो वे उसे उत्तर न दे पाए। यह कहने के सिवाय कि यीशु मनुष्य और ईश्वर दोनों है इस तर्क का उत्तर देने का और कोई तरीका नहीं है कि वह मनुष्य का पुत्र होने के साथ-साथ परमेश्वर का पुत्र भी है। दाऊद के समय में वह पिता के साथ था। इस संसार में आने से पहले वह परमेश्वर के साथ था और वह परमेश्वर था (देखें यूहन्ना 1:1, 2)।

4. *यीशु हमारा प्रभु है।* यीशु मसीहा है इसलिए वह वही है जिसे परमेश्वर ने हमें बचाने और अनन्त महिमा में ले जाने के लिए भेजा। यदि यीशु दाऊद का प्रभु है, तो वह हमारा भी प्रभु है और हर किसी का प्रभु है। परमेश्वर ने उसे सब लोगों का उद्धारकर्त्ता और मसीहा बनने के लिए भेजा। परमेश्वर जो कि हर किसी से प्रेम करता है और चाहता है कि हर किसी का उद्धार हो, ने यीशु को देहधारी होकर मनुष्यों के बीच में, परमेश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ बनने के लिए भेजा। क्रूस पर उसका बलिदान कालांतर के लोगों की ओर पीछे को और शेष रहते समय के सब लोगों की ओर आगे तक पहुंचता है। पौलुस ने लिखा:

> यह हमारे उद्धारकर्ता परमेश्वर को अच्छा लगता और भाता भी है, जो यह चाहता है कि सब मनुष्यों का उद्धार हो, और वे सत्य को भली भांति पहचान लें। क्योंकि परमेश्वर एक ही है और परमेश्वर और मनुष्यों के बीच में भी एक ही बिचवई है, अर्थात मसीह यीशु जो मनुष्य है। जिसने अपने आप को सब के छुटकारे के दाम में दे दिया, उसकी गवाही ठीक समय पर दी गई (1 तीमु. 2:3-6)।

निष्कर्ष: फरीसियों को अपने परमेश्वर होने के उसके दिए गए तर्क को मानकर यीशु की गवाही में विश्वास करने वाले हर किसी को यह मानना पड़ेगा कि वह प्रतिज्ञा किया हुआ, परमेश्वर-मनुष्य, परमेश्वर का पुत्र और हमारा प्रभु है। यीशु की खराई के दूरगामी निष्कर्ष आवश्यक हैं। इन भारी अर्थों के प्रकाश में हमें हैरान नहीं होना चाहिए कि पूरे नये नियम में इस भजन का यही अर्थ मिलता है। यीशु का भजन 110 में से दोहराना, नये नियम में उसके मसीहा होने की सबसे स्पष्ट पुष्टि है।

भजन 110 का शेष भाग उस विजय की घोषणा करता है जो मसीहा के राज्य के साथ होगी। परमेश्वर उसके हाथ में छड़ी पकड़ा देगा और वह अपने पीछे चलने वालों को सम्पूर्ण विजय दिलाएगा। कितना अद्‌भुत उद्धारकर्त्ता है!

विधवा का प्रशंसनीय दान (12:41-44)

मन्दिर में स्त्रियों के आंगन में ओसारे या आश्रय थे और खम्भे मन्दिर की गतिविधियों में भाग लेने का प्रसिद्ध स्थान थे। इन मठों में मन्दिर में चंदा देने वालों के लिए दान पात्र रखे होते थे। इन तुरहीनुमा संदूकों में डाले जाने वाले दानों का इस्तेमाल मन्दिर के रख-रखाव और सेवाओं के लिए किया जाता था। शायद हर संदूक पर लिखा रहता था कि इसमें डाले गए धन का इस्तेमाल कैसे होगा।

मरकुस ने लिखा है कि यीशु ''मन्दिर के भण्डार के सामने बैठकर देख रहा था कि लोग मन्दिर के भण्डार में किस प्रकार पैसे डालते हैं'' (12:41)। मन्दिर के उस क्षेत्र के लिए यह

काफ़ी व्यस्तता भरा समय होता होगा, क्योंकि ''बहुत से धनवानों ने बहुत कुछ डाला'' (12:41)। दान में दिया जाने वाला योगदान तांबे के सिक्कों का होता था। धनवान काफ़ी संख्या में सिक्के डाल रहे थे।

लोगों को दान डालते देखते हुए यीशु का ध्यान एक दान देने वाली महिला पर पड़ा जो कि विधवा थी। वह निर्धन और अकेली थी। वह निराश थी परन्तु फिर भी एक ऐसी व्यक्ति बन गई जिसे हम सब बड़ा सराहते हैं। संदूक के पास जाकर उसने चुपके से अपना योगदान डाल दिया और फिर चुपके से निकल गई (12:42)। हो सकता है कि उसे जीते जी और मरने तक यह पता न हो कि जो काम उसने किया था उसका कितना बड़ा प्रभाव है।

छोटे से छोटा यहूदी सिक्का *लैप्टन* होता था। यह *असेरियुस* के चौथे भाग के जितना था और *असेरियुस* दिनार के सोलहवें भाग जितना। कहते हैं कि रब्बी लोग दो लैपटा से कम दान देने की अनुमति नहीं देते थे। इस विधवा ने उससे भी कम लाया होगा। नये नियम में *लैप्टन* (दमड़ी) शब्द लूका 12:59 में मिलता है। इस महिला ने अपने दो सिक्के डाले और उसका धन सामान्य चंदे के साथ मिल गया; परन्तु यह कहानी का अंत नहीं था।

यीशु ने अपने चेलों को पास बुलाया और उन्होंने इस सरल से कार्य से एक कीमती सबक लिया। उसने अपनी बात का आरम्भ ''सच कहता हूं'' से किया, जो कि वही शब्द था जो यूनानी और इब्रानी भाषा में ''आमीन'' के लिए इस्तेमाल होता है, शब्द जिसका इस्तेमाल सुसमाचार के विवरणों में केवल हमारे प्रभु के द्वारा किया गया।

उसने चेलों को बताया कि इस विधवा ने अभाव में से दिया था (12:43, 44); उसने अपना सब कुछ दे दिया था। यीशु ने कहा कि इस स्त्री ने इस प्रकार से देकर भण्डार में दूसरे सब दानियों से बढ़कर डाला था। दूसरों ने जहां अपनी बढ़ती में से दिया था वहीं इस स्त्री ने अपनी कंगाली में से दिया।

यीशु अपने प्रेरितों को यह बताना चाहता था कि उसने क्या दिया था और कैसे दिया था। निश्चय ही वह चाहता है कि हम भी उसे जो उसने किया था, ध्यान से देखें।

1. *इस स्त्री के दान परमेश्वर में उसके भरोसे को दिखाया।* अपना सारा धन दान की पेटी में डालते हुए वह अपने मन में कह रही होगी, ''मेरा विश्वास है कि परमेश्वर मेरा ध्यान रखेगा। मैं यह नहीं जानती कि वह कैसे देगा परन्तु मैं अपने आपको उसके उदार हाथों में दे रही हूं।'' वह अब धन पर भरोसा नहीं रख सकती थी क्योंकि अब उसके पास कुछ बचा ही नहीं था।

सचमुच का दान और परमेश्वर में भरोसा दोनों साथ-साथ चलते हैं। कोई कहता है, ''मुझे अपना धन पास रखना आवश्यक है। मुझे अपने भविष्य का सोचना है।'' इस महिला के सामने भी यही चुनौती थी। है न या नहीं? परन्तु वह परमेश्वर में भरोसा रखने के रास्ते पर चली। यदि वह एक दमड़ी रख लेना चुनती तो उसने दे नहीं पाना था। यदि वह दे देती तो उसके वह सब देना आवश्यक था, जो उसके पास था।

2. *उसके दान से उसकी आत्मिकता का पता चला।* देना केवल एक शारीरिक कार्य ही नहीं है। जब देना सही प्रकार के मन से यानी आज्ञाकारी मन से होता है तो यह एक आत्मिक कार्य होता है। यह कुछ कुछ प्रार्थना करने के जैसा ही है। कोई प्रार्थना करते हुए गलातियां करता है और कोई उन याचनाओं का उत्तर देना परमेश्वर पर छोड़ देता है। चंदे के सम्बन्ध में

वह परमेश्वर की इच्छा से मेल खाते हुए देना चुनता है और फिर उस दान के इस्तेमाल की बात परमेश्वर पर छोड़ देता है। देना परमेश्वर और देने वाले के बीच की बात है, वैसे ही जैसे प्रार्थना परमेश्वर और उस प्रार्थना करने वाले के बीच की बात है।

3. *उसके देने से आज्ञाकारिता दिखाई दी।* यह स्त्री मन्दिर में क्यों थी? उसने अपने सिक्के दान की पेटी में डालने के लिए तैयारी क्यों की थी? उसे परमेश्वर से पता चला था कि उसकी आराधना और काम के लिए ऐसा योगदान दिया जाना आवश्यक है। उसने केवल इसलिए नहीं दिया होगा कि कोई जरूरत होगी। बल्कि वह इसलिए दे रही होगी, क्योंकि परमेश्वर ने उसे देने की आज्ञा दी थी।

वह यह तर्क दे सकती होगी कि मन्दिर की सेवा में बहुत सी बातें गलत हो रही थीं। वह कह सकती होगी, ''मन्दिर के अगुवे धन के लोभी हैं। वे याजकाई का अपना काम केवल धन के लिए करते हैं।'' वह कह सकती होगी, ''मेरे पास तो केवल थोड़े से पैसे हैं। यदि मैं इन्हें नहीं दे देती हूं तो किसी का ध्यान भी नहीं जाएगा।'' परन्तु उसने किसी भी चीज़ को बीच में नहीं आने दिया। वह परमेश्वर की आज्ञा को मानना चाहती थी और उसकी कंगाली भी उसे रोक नहीं पाई।

4. *उसके देने से दीनता दिखाई दी।* यीशु ने कहा, ''जब तू दान करे, तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायां हाथ न जानने पाए'' (मत्ती 6:3)। इस महिला के पास यह बताने के लिए कि वह क्या कर रही है, तुरही फूंकने वाले सहायक नहीं थे। उसने खामोशी से और चुपके से दिया। परमेश्वर के सामने कुर्बानी भरे प्रेम को दर्शाने वाला छोटे से छोटा दान प्रेमहीन और दिखावे भरा बड़े से बड़े दान से कहीं महत्वपूर्ण है। यदि हम परमेश्वर को केवल अपने हाथों से देते हैं तो यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है।

5. *उसका दान बलिदान का नमूना बन गया।* बलिदान इससे नापा जाता है कि किसी ने क्या छोड़ा है न कि इससे उसने कितना दिया है। प्रेमहीन बलिदान कुर्बानी भरे प्रेम के बराबर नहीं है। परमेश्वर ने अपना इकलौता पुत्र दे दिया। वह बलिदान यह था। यीशु ने अपना प्राण दे दिया। बलिदान यह था। इस महिला ने जो कुछ उसके पास था वह सब दे दिया। बलिदान यह था। क्या हमने परमेश्वर के लिए कभी बलिदान दिया है।

निष्कर्ष: यीशु ने हम से इस महिला के दान देने को देखने को क्यों कहा? वह हमें समझाना चाहता था कि सचमुच में दान देना क्या होता है। दान देने का सबसे बड़ा तरीका परमेश्वर में भरोसा रखना, आत्मिकता, आज्ञा मानना, दीनता और बलिदान है।

परमेश्वर संसार में सही प्रकार से दान देने का इस्तेमाल अलग-अलग ढंगों से करता है। उसने सदियों तक अपने लोगों को यह समझाने और आशीष देने के लिए। इस स्त्री के दान का इस्तेमाल किया है।

टिप्पणियां

[1]समानांतर विवरण मत्ती 21:33-46 और लूका 20:9-19 में हैं। [2]विलियम बार्कले, द *गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* दूसरा संस्करण, द डेली स्टडी बाइबल (फिलाडेल्फिया: वेस्टमिंस्टर प्रेस, 1956), 293. [3]डोनल्ड इंग्लिश, द *मैसेज ऑफ़ मरकुस: द मिस्टरी ऑफ़ फ़ेथ,* द बाइबल स्पीक्स टुडे (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1992), 194. [4]दूसरी और पहली सदी ई.पू. में एक बड़ी विजय में, मक्काबी परिवार ने सीरिया के कब्जे से छुड़ाकर यहूदिया

में राज सत्ता को बहाल कर दिया। उन्होंने सीरिया के राजा अंतियोकुस एपिफेनस के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया और हेरोदेस महान के पहले तक हस्मोनी (मक्काबी) शासन लागू कर दिया। युद्ध का विवरण 1 और 2 मक्काबियों की अप्रामाणिक पुस्तकों में मिलता है। यहूदियों ने अपने से अधिक शक्तिशाली सीरियाइ सेनाओं पर अपनी विजय को परमेश्वर का प्रबन्ध मानते थे। [5]जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे ऐंड फिलिप वाई. पेंडल्टन, *द फ़ोरफ़ोल्ड गॉस्पल ऑर ए हार्मनी ऑफ़ द फ़ोर गॉस्पल्स* (सिनसिनाटी: स्टैंडर्ड पब्लिशिंग कं., 1914), 593. [6]यहूदी परम्परा के अनुसार, मनश्शे के शासनकाल में यशायाह को आरे से चीरा गया था। (*द इंटरनैशनल स्टैंडर्ड बाइबल इंसाइलोपीडिया,* संशो. व संस्क., सम्पा. ज्योफ़्री ब्रोमिले [ग्रैंड रैपिड्स मिशिगन: विलियम बी. एडज़मैंस पब्लिशिंग कं. 1982], 2:885-86 में ज्योफ़्री एल. रोबिन्सन ऐंड रॉलेंड के. हैरिसन, ''आइज़ियाह।'') [7]वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे की यह बात सही हो सकती है कि यीशु ने ''न्याय के गम्भीर आदेश के रूप में'' उनकी बात को दोहराया (वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे, *द वियर्सबे बाइबल कॉमैंट्री: न्यू टैस्टामैंट* [कोलोराडो स्प्रिंग्स, कोलोराडो: डेविड सी. कुक, 2007], 123.) [8]समानांतर विवरण मत्ती 22:15-22 और लूका 20:20-26 में हैं। [9]''पोल'' अंग्रेज़ी के पुराने शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ ''सिर'' है; हर व्यक्ति को यह वार्षिक कर चुकाना आवश्यक होता था। (डेविड रोपर, *द लाइफ़ ऑफ़ क्राइस्ट, 2: ए सपलिमेंट,* ट्रुथ फ़ॉर टुडे कॉमैंट्री सीरीज़ [सरसी, आरकैंसा: रिसोर्स पब्लिकेशंस, 2003], 280.) [10]बार्कले, 297-98.

[11]जोसेफ़स ने ''हेरोदियों'' का उल्लेख नहीं किया, न ही नये नियम में ''एसेनियों'' का नाम है। आज कुछ पुरात्वविदो को मानना है कि ये गुट एक ही थे, शायद हेरोदेस के सम्मान में कही गई जोसेफ़स की बात के कारण। (जोसेफ़स *वार्स* 3.2.1 [11]; 5.4.2 [145]।) [12]हेरोदेस के दादा अंतिफास ने सम्भवतया उन देशों पर और नियन्त्रण पाने के लिए जिन पर रोम ने उसे अधिकारी बनाया था, यहूदी मत धारण किया था। परन्तु यहूदी मत धारण करने वालों को पूरी तरह से यहूदी नहीं माना जाता था; न ही उसकी संतान को। तीसरी पीढ़ी होने के कारण हेरोदेस को ''पूरा यहूदी माना जाता'' होगा, चाहे उसे धार्मिक नहीं माना जाता होगा। (पीटर रिचर्डसन, *हेरड: किंग ऑफ़ द ज्यूस ऐंड फ्रेंड ऑफ़ द रोमन्स* [मिनियापोलिस फ़ोर्ट्रेस प्रेस, 1996], 52-33.) [13]रोनल्ड जे. कर्नाघन, *मरकुस,* द IVP न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री सीरीज़ (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 2007), 230. [14]विलियम हैंड्रिक्सन, *एक्सपोज़िशन ऑफ़ द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू मरकुस,* न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1975), 480. [15]हैंड्रिक्सन, 483. यह संक्षिप्त रूप में उकेरा गया था, जैसे अधिकतर पत्थर और सिक्के की खुदाइयों की तरह। [16]वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे, *बी डिलीजेंट (मरकुस),* न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री (कोलोराडो स्प्रिंग्स, कोलोराडो: डेविड सी. कुक, 1987), 140. [17]आज भी दक्षिणी इटली से रोम को जाने वाला मुख्य मार्ग वही अपियन मार्ग है, जिस से राजधानी में पहले पौलुस गया था। [18]समानांतर विवरण मत्ती 22:23-33 और लूका 20:27-39 में हैं। [19]जोसेफ़स ने कहा है कि ''फरीसियों ने परम्परा के रूप में लोगों को अपने पूर्वजों से मिले कई बड़े नियम दे दिए थे, जो मूसा की व्यवस्था में नहीं लिखे गए थे'' (जोसेफ़स *एंटिक्विटीज़* 13.10.6 [297])। [20]क्रेवा के लिए *लेवर* ''देवर'' के लिए लेविर लातीनी भाषा से लिया गया शब्द है।

[21]लगभग 200 ई.पू. में लिखी गई टोबिथ की अप्रामाणिक कहानी एक महिला के बारे में बताती है जिसके सात पति थे परन्तु कोई संतान नहीं थी। (टोबिथ 3:8.) सदूकियों का मानना हो सकता है कि यह कहानी तथ्यों पर आधारित थी। [22]जॉन फ्रैंक्लिन क्रेटर, *ए लेमैंस हार्मिन ऑफ़ द गॉस्पल्स* (नैशविल्ल: ब्रोर्डमैन प्रैस, 1961), 260. [23]देखें यशायाह 14:9; 25:8; 26:19; 66:24; यहेजकेल 37:1-14; दानिय्येल 12:2. [24]रोपर, 286. [25]हैंड्रिक्सन ने सुझाव दिया कि ''तुम धोखा दे रहे हो '... हो सकता है कि बुरे अर्थ वाला न हो''' (हैंड्रिक्सन, 489)। [26]एक समानांतर विवरण मत्ती 22:34-40 में है। [27]यह संख्या दांतों को छोड़ जोड़ों और हड्डियों की है। [28]बेबीलोनियन ताल्मुड *मेक्लोथ* 23बी. ''नकारात्मक नियम'' न करने के बारे में है जबकि ''सकारात्मक नियम'' कुछ करने की आज्ञाएं हैं। [29]''शेमा'' नाम व्यवस्थाविवरण 6:4 में पहले शब्द (שְׁמַע, *shema',* ''सुनना'') से लिया गया है। [30]आर. ए. कोल, *द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू सेंट मरकुस: ऐन इंट्रोडक्शन ऐंड कॉमैंट्री,* द टिंडेल न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्रीस [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एडज़मैंस पब्लिशिंग कं., 1973), 192.

[31]आर. सी. फोस्टर, *स्टडीज़ इन द लाइफ़ ऑफ़ क्राइस्ट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1971), 1177. [32]समानांतर विवरण मत्ती 22:41-46 और लूका 20:41-44 में हैं। [33]यह विचार कई भागों में पाया जाता है: भजन 89:20-29; यशायाह 9:7; 11:1; यिर्मयाह 23:5, 6; 33:14-18; यहेजकेल 34:23, 24. [34]फ़ोस्टर, 1177.

[35]बार्कले, 312. [36]इंग्लिश, 200. [37]फ़ोस्टर, 1178. [38]बार्कले ने लिखा है कि सोलहवीं सदी में स्टेफनुस ने आयतों का विभाजन किया। कहते हैं कि उसने ऐसा अपने घर से अपनी प्रिंटिंग फैकट्री पर जाते-जाते किया। (बार्कले, 312-13.) [39]हैंड्रिक्सन, 501. [40]ऐलन ब्लैक, *मरकुस*, द कॉलेज प्रेस NIV कॉमैंट्री (जोपलिन, मिसोरी: कॉलेज प्रेस पब्लिशिंग कं., 1995), 219.

[41]समानांतर विवरण मत्ती 23:1-39 और लूका 20:45-47 में हैं। [42]बेशक आज कुछ डिनोमिनेशनों के पादरियों के लिबास रब्बियों के वस्त्रों, ज्ञान (पढ़ाई) या अधिकार के स्तर का पता चलता था। [43]बेबीलोनी ताल्मुड *बेराक्रोथ* 32ख. [44]एक समानांतर विवरण लूका 21:1-4 में है। [45]मिशना *शिक्कालिम* 5.6.5. [46]हैंड्रिक्सन ने कहा कि *लैप्टन* ''चौथा भाग'' होता था। किसका चौथा भाग, डॉलर का? नहीं, *ऐस* या *असेरियस* का। और असेरियस दीनार का *सोलहवां भाग* होता था होता था!'' दीनार एक मज़दूर की एक दिन की मज़दूरी के बराबर होता था। इसलिए इस महिला द्वारा दिए गए सिक्के, ''पैनी के एक भाग से बढ़कर नहीं'' थे। (हैंड्रिक्सन, 506-7.) [47]बेबीलोन ताल्मुड *मक्कोथ* 23ख-24क।